UGC NET MASS COMUNICATION

SAMPLE THEORY

PAPER - II

- प्रेस परिषद
- शोध प्रविधि एवं जनसंचार शोध

VPM CLASSES
For IIT-JAM, JNU, GATE, NET, NIMCET and Other Entrance Exams
1-C-8, Sheela Chowdhary Road, Talwandi, Kota (Raj.) Tel No. 0744-2429714
Web Site www.vpmclasses.com E-mail-vpmclasses@yahoo.com

प्रेस परिषद

1965 के प्रेस परिषद अधिनियम के अन्तर्गत गठित प्रेस परिषद में अध्यक्ष के अलावा 25 सदस्य ओर होते थे। इन 25 सदस्यों में 13 श्रमजीवी पत्रकारों के प्रतिनिधि, 6 समाचारपत्र मालिकों के प्रतिनिधि, 3 संसद के दोनों सदनों के प्रतिनिधि तथा शेष 3 शिक्षा और विज्ञान, कानून, साहित्य तथा संस्कृति आदि के विशेषज्ञ अथवा व्यावहारिक अनुभव वाले लोग होते थे। श्रमजीवी पत्रकारों के 13 प्रतिनिधियों में 6 ऐसे समाचारपत्र संपादक होते थे, जिनका समाचारपत्र के प्रबंधन में कोई हाथ नहीं होता था। 1965 के प्रेस परिषद अधिनियम में 1970 में संशोधन किया गया, जिसके अनुसार समाचार एजेंसियों को प्रतिनिधित्व देने के लिए परिषद के कुल सदस्यों की संख्या 26 कर दी गई। इसी संशोधन में अध्यक्ष के चुनाव के लिए एक तीन सदस्य समिति का प्रावधान भी किया गया।

अध्यक्ष और सदस्यों के चुनाव की प्रक्रिया

1970 के संशोधन से पहले अध्यक्ष का मनोनयन भारत के मुख्य न्यायाधीश किया करते थे। संसद के तीन प्रतिनिधियों में दो का मनोनयन लोकसभा के अध्यक्ष और एक का राज्यसभा के अध्यक्ष के द्वारा किया जाता था। शेष 22 सदस्यों का चुनाव एक तीन सदस्यीय चयन समिति करती थी। भारत के मुख्य न्यायाधीश, राष्ट्रपति का एक प्रतिनिधि और प्रेस परिषद के अध्यक्ष इस चयन समिति के सदस्य होते थे। अध्यक्ष और सदस्यों का कार्यकाल तीन वर्ष का होता था और वे दूसरी बार निर्वाचित होकर तीन वर्ष ओर अपने पद पर बने रह सकते थे।

1965 के प्रेस परिषद अधिनियम के अधीन गठित प्रेस परिषद अपने कार्यकाल ही पूरे कर पाई थी कि 25 जून, 1975 को देश के आंतरिक आपातकाल लगा दिया गया। प्रेस परिषद भी उसकी चपेट में आ गई। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा की सरकार ने दिसम्बर, 1975 में प्रेस परिषद अधिनियम को निरस्त कर दिया और 1 जनवरी, 1976 को प्रेस परिषद को भंग कर दिया गया।

प्रेस परिषद अधिनियम, 1978

तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने जनवरी, 1977 में आपातकालीन स्थिति समाप्त करने और उसी वर्ष मार्च में लोकसभा के चुनाव कराने का निर्णय किया। उस चुनाव में कांग्रेस बुरी तरह पराजित हुई और कांग्रेस विरोधी अधिकतर दलो के विलय से बनी जनता पार्टी केंद्र में सत्तारूढ़ हुई। उसने प्रेस परिषद के पुनर्गठन करने का फैसला किया। जनता पार्टी की सरकार ने 1978 में प्रेस परिषद अधिनियम बनाया, जिसके तहत 1979 में प्रेस परिषद का पुनर्गठन किया गया। पुनर्गठित प्रेस परिषद को भी वही कार्य सौंपे गए, जो 1966 में गठित प्रेस परिषद को सौंपे गए थे, अर्थात् प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा

VPM CLASSES

करना, प्रेस के उच्च मानकों को बनाए रखना, प्रेस के आत्म–नियंत्रण के लिए दिशा–निर्देश देना इत्यादि।

नए प्रेस परिषद अधिनियम के अंतर्गत अध्यक्ष के अलावा प्रेस परिषद के सदस्यों की संख्या 28 कर दी गई। 28 में 13 श्रमजीवी पत्रकार वर्ग से चुने जाते हैं, जिनमें 6 ऐसे संपादक होते हैं, जिनका समाचारपत्र के प्रबंधन कार्य से कोई संबंध न हो। 6 सदस्य पूर्ववत समाचारपत्र मालिकों अथवा समाचारपत्र के प्रबन्धन से संबद्ध व्यक्तियों में से चुने जाते हैं। एक सदस्य समाचार एजेंसियों का प्रतिनिधि होता है। विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ तीन सदस्यों का मनोनयन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग : यू.जी.सी.; साहित्य कला परिषद और बार काउंसिल ऑफ इंडिया करती है। ये तीनों संस्थाएं एक–एक सदस्य नामित करती है। शेष 5 सदस्य होते हैं – तीन लोकसभा से और दो राज्यसभा से, जिनका मनोनयन दोनों सदनों के अध्यक्ष करते है।

7 श्रमजीवी पत्रकारों का चयन पत्रकारों के तीन राष्ट्रीय संगठनों नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट्स इंडिया, इंडियन फेडरेशन ऑफ वर्किंग जर्नलिस्ट्स और इंडियन जर्नलिस्ट्स तथा प्रेस एसोसिएशन के प्रस्तावित प्रतिनिधियों के नामों के पैनलों से लाटरी निकाल कर किया जाता है, किंतु लाटरी में वे नाम ही सम्मिलित किए जाते हैं, जिन्हें कम से कम दो पत्रकार संगठनों ने प्रस्तावित किया हो।

प्रेस परिषद की संरचना

नए अधिनियम को व्यवस्था के अनुसार अध्यक्ष का चुनाव एक तीन सदस्यीय समिति करती है, जिसमें राज्यसभा और लोकसभा के अध्यक्षों के अलावा प्रेस परिषद के नवनिर्वाचित सदस्यों के द्वारा अपने बीच से चुना गया एक सदस्य होता है। भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष और सदस्यों के चुनाव की यह प्रक्रिया प्रेस परिषद के लम्बे कार्यकाल के अनुभव के आधार पर तैयार की गई है, किन्तु निहित स्वार्थ वाले संगठनों की जोड़–तोड़ ने इसे भी दोषपूर्ण बना दिया है और सरकार अब एक ऐसी प्रक्रिया बनाने का प्रयास कर रही है, जो निहित स्वार्थ वाले संगठनों को जोड़–तोड़ का अवसर देने वाली न हो।

प्रेस परिषद एक स्वायत्तशासी संस्था है और उसके गठन में सरकार का कोई हस्तक्षेप नहीं होता। जनता के द्वारा चुने गए सांसद (लोकसभा और राज्यसभा के अध्यक्ष) और विभिन्न पत्रकार संगठनों के प्रतिनिधियों में से चुना गया एक सदस्य प्रेस परिषद के अध्यक्ष को चुनते है। प्रेस परिषद का अध्यक्ष देश के सर्वोच्च न्यायालय का कोई अवकाश प्राप्त न्यायाधीश होता है। सरकार का कार्य तो राजपत्र (गजट) में मनोनीत अध्यक्ष तथा परिषद के सदस्यों के नाम प्रकाशित करने तक ही सीमित होता है।

कोई व्यक्ति कितने ही उच्च पद पर आसीन क्यों न हो, वह परिषद के गठन की प्रक्रिया को प्रभावित नहीं कर सकता, जिसका श्रेय मनोनयन की प्रक्रिया को दिया जाना चाहिए।

प्रेस परिषद के वित्तीय स्त्रोत

भारतीय प्रेस परिषद के दो वित्तीय स्त्रोत हैं – एक, केन्द्र सरकार से मिलने वाला अनुदान और दो, समाचारपत्र संस्थानों से मिलने वाली लेवी। 5,000 या उससे अधिक प्रसार संख्या वाले सभी समाचारपत्रों के अनुसार प्रतिवर्ष लेवी का भुगतान करना होता है। पंजीकृत समाचारपत्र – पत्रिकाओं पर लेवी की राशि प्रेस परिषद निर्धारित करती है।

प्रेस परिषद का अपना कोष है, जिसमें अनुदान और लेवी में मिला धन जमा किया जाता है। इसी कोष के धन से प्रेस परिषद अपना खर्च चलाती है। वह आवश्यकतानुसार सरकार से अनुदान मांग सकती है अथवा अग्रिम राशि प्राप्त कर सकती है। प्रेस परिषद का धन किसी बैंक में जमा करना होता है। वह चाहे, तो सरकार की अनुमति से अपने धन का किसी लाभप्रद योजना में निवेश भी कर सकती है। प्रेस परिषद अधिनियम के अंतर्गत परिषद को अपना कामकाज चलाने के लिए अपने कोष के धन को खर्च करने का अधिकार है। परिषद के अध्यक्ष परिषद को तात्कालिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए 30 हजार रूपये तक की धनराशि स्वेच्छा से व्यय कर सकते हैं, किंतु इससे अधिक धन प्रेस परिषद की अनुमति से ही खर्च किया जा सकता है। प्रेस परिषद का अपना वार्षिक बजट होता है, जिसमें परिषद के कर्मचारियों के वेतन, परिषद की बैठकों पर होने वाला खर्च, यात्रा भत्ते आदि सभी व्ययों का समावेश होता है।

प्रेस परिषद के अधिकार और कार्य

1978 के प्रेस परिषद अधिनियम के अंतर्गत भी भारतीय प्रेस परिषद के उद्देश्य और कार्य लगभग वे ही हैं, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। मामूली परिवर्तन करके उनमें से तीन कार्य 1978 के अधिनियम में शामिल नहीं किए गए हैं। ये कार्य हैं – (अ) समाचारपत्रों के लिए समाचारों के संभरण और वितरण के लिए ऐसी सामान्य सेवा की स्थापना को प्रोत्साहन देना, जिसे प्रेस परिषद वांछनीय समझे, (ब) पत्रकारिता के व्यवसाय से जुड़े लोगों की शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं प्रदान करना, और (स) तकनीकी तथा अन्य अनुसंधान कार्यों को प्रोत्साहन देना। इनके स्थान पर दो नए कार्य प्रेस परिषद को सौंपे गए। ये कार्य हैं – (अ) भारत स्थित किसी विदेशी दूतावास या अन्य प्रतिनिधि के द्वारा प्रकाशित समाचारपत्रों सहित विदेशी समाचारपत्रों का, उनकी प्रसार संख्या तथा प्रभाव की दृष्टि से, अध्ययन करना, और (ब) भारत सरकार के सौंपे किसी भी मामले का अध्ययन करके

उस पर अपनी राय सरकार को देना। किंतु प्रेस परिषद का मुख्य कार्य है प्रेस के विरुद्ध और प्रेस के द्वारा की गई शिकायतों की जांच–पड़ताल करना, संबद्ध पक्षों की मौखिक सुनवाई करना और अपना निर्णय देना। 1998–2001 के कार्यकाल वाली प्रेस परिषद ने दो अन्य महत्वपूर्ण कार्य हाथ में लिए थे – एक, प्रिंट मीडिया के भविष्य के बारे में प्रेस से संबद्ध सभी पहलुओं का अध्ययन करके एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार करना, और दो, प्रेस और पत्रकारों पर होने वाले अत्याचारों तथा आक्रमणों से संबंधित तथ्य एकत्र करना।

प्रेस परिषद की कार्य प्रणाली

भारतीय प्रेस परिषद का एक सचिवालय है, जो फिलहाल नई दिल्ली के कोपरनिक्स मार्ग पर फरीदकोट हाउस में स्थित है। प्रेस परिषद ने यह कार्यालय किराए पर ले रखा है। अब सरकार ने प्रेस परिषद के कार्यालय के लिए रफी मार्ग पर भूमि आवंटित कर दी है। साल–दो साल में भवन का निर्माण हो जाने के बाद प्रेस परिषद का सचिवालय वहीं से काम करने लगेगा। परिषद के कार्यालय में अध्यक्ष के अलावा सचिव, संयुक्त सचिव, लेखाधिकारी आदि लगभग सौ कर्मचारी नियुक्त हैं। परिषद का अपना पुस्तकालय भी है, जिसमें विभिन्न विषयों से संबंधित पुस्तकें है।

प्रेस परिषद को मिली शिकायतों की सुनवाई के लिए प्रेस परिषद के 14-14 सदस्यों की दो जांच समितियां गठित की जाती है। अध्यक्ष और सचिव सुनवाई के दौरान दोनों समितियों में बैठते है। जांच समिति के सामने लाने से पहले सभी शिकायतों को पहले परिषद के अध्यक्ष देखते हैं। वे उन शिकायतों को नामंजूर कर देते हैं, जिन्हे वे सुनवाई के योग्य नहीं समझते हैं। शेष शिकायतों की अलग–अलग फाइले बनाई जाती है। अंग्रेजी के अलावा अन्य भाषाओं में मिली शिकायतों का अंग्रेजी में अनुवाद किया जाता है। फिर शिकायतों पर प्रतिवादियों का लिखित उत्तर मंगाया जाता है। प्रतिवादी के लिखित उत्तर पर वादी का जवाब मंगाया जाता है। फिर सभी शिकायतों का संक्षिप्त विवरण तैयार किया जाता है। सुनवाई की तारीख तय हो जने पर शिकायत से संबद्ध सभी पक्षों को जांच समिति के समक्ष उपस्थित होने की सूचना दी जाती है। ये सभी कार्य प्रेस परिषद का सचिवालय संपन्न करता है। निर्धारित तिथि पर प्रेस परिषद की जांच समिति शिकायतों की मौखिक सुनवाई करती है और अपनी अनुशंसाएं प्रेस परिषद के समक्ष प्रस्तुत करती है। फिर प्रेस परिषद की पूर्ण बैठक मे उन पर निर्णय किया जाता है और तब उस निर्णय की सूचना वादी और प्रतिवादी दोनों को दी जाती है। प्रेस परिषद का निर्णय अंतिम होता है और उसे किसी अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

प्रेस परिषद और प्रेस की स्वतंत्रता

लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रेस का महत्व इस बात से आंका जा सकता है कि उसे लोकतंत्र का चतुर्थ स्तंभ अथवा लोकतंत्र का प्रहरी कहा जाता है। प्रेस अपनी यह भूमिका तभी निभा सकती है, जब उसे बिना किसी व्यवधान के अपना कार्य करने की स्वतंत्रता हो। उसे किसी सार्वजनिक अथवा निजी प्राधिकरण या प्रतिष्ठान के हस्तक्षेप के बिना सूचना पाने और उसे पाठकों तक पहुँचाने की छूट हो। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि प्रेस को निरंकुश छोड़ दिया जाए। प्रेस ऐसा कुछ न करे; जो राष्ट्र और समाज का अहित करने वाला हो। इसके लिए यह आवश्यकता महसूस की गई कि प्रेस को कुछ ऐसे दिशा–निर्देश दिया जाएं, जिनका अनुसरण करते हुए प्रेस अपना उत्तरदायित्व भीतरी अथवा बाहरी हस्तक्षेप के बिना निभा सके। प्रेस की स्थिति के सांगोपंग अध्ययन और उसमें सुधार के लिए आवश्यक सुझाव देने के लिए 1952 में गठित प्रथम प्रेस आयोग ने प्रेस परिषद के गठन का सुझाव दिया।

केंद्र सरकार ने प्रेस आयोग की सिफारिशें आने के लगभग एक दशक बाद 4 जुलाई, 1966 को प्रेस परिषद के गठन का निर्णय किया। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, भारतीय प्रेस परिषद एक स्वायत्तशासी, संवैधानिक और अर्द्ध न्यायिक संस्था है, जिसका मुख्य उद्देश्य है प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा करना, जनरूचि के उच्चादर्श बनाए रखने के लिए प्रेस को प्रोत्साहित करना, नागरिकों में अधिकारों और कर्त्तव्यों की भावना को बढ़ावा देना और पत्रकारिता के व्यवसाय में लगे सभी लोगों को अपने उत्तरदायित्व और जनसेवा के प्रति सतत जागरूक बनाए रखना। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए 1965 के प्रेस अधिनियम के तहत केंद्र सरकार ने भारतीय प्रेस परिषद को निम्नांकित कार्य सौंपे –

- प्रेस की स्वतंत्रता बनाए रखने में समाचारपत्रों की सहायता करना।
- श्रेष्ठ व्यावसायिक मानदंडों के अनुरूप समाचारपत्रों और पत्रकारों के लिए आचार संहिता का निर्माण करना।
- जनहित के उच्च मानदंड बनाए रखने के प्रेस के उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करना।
- प्रेस की ओर से नागरिकों के अधिकारों और कर्त्तव्यों की भावना को प्रोत्साहन देना।
- पत्रकारिता के व्यवसाय से जुड़े सभी लोगों में उत्तरदायित्व और जनसेवा की भावना को बढ़ावा देना।
- जनहित के महत्वपूर्ण समाचारों के संभरण तथा वितरण में बाधा पहुंचाने वाली किसी भी घटना की समीक्षा करना।

- किसी भारतीय समाचारपत्र या समाचार एजेंसी को विदेशी स्त्रोत से मिली सहायता जैसे उन मामलों की समीक्षा करना, जो उसे केंद्र सरकार ने सौंपे, बशर्ते उसका यह कार्य मामले की किसी अन्य प्रकार से जांच कराने के सरकार के रास्ते में रोड़ा न बने।
- समाचारपत्रों के लिए समाचारों के संभरण और वितरण के ऐसी समान सेवा की स्थापना को प्रोत्साहन देना, जिसे प्रेस परिषद समय–समय पर उचित और आवश्यक समझे।
- पत्रकारिता से संबद्ध लोगों की उचित शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं उपलब्ध कराना।
- किसी समाचारपत्र के सभी वर्गों के लोगों के बीच उचित कार्य संबंध को प्रोत्साहन देना।
- ऐसी घटनाओं का अध्ययन करना, जो समचारपत्रों को स्वामित्व के एकाधिकार या केंद्रीयकरण की ओर ले जाने वाली हों। इसमें समाचारपत्रों के स्वामित्व और वित्तीय ढंग का अध्ययन करना और आवश्यक हो तो उसके निवारण के उपाय सुझाने जैसे कार्य शामिल है।
- तकनीकी और अन्य अनुसंधान कार्यों को प्रोत्साहन देना।
- ऐसे अन्य कार्य करना, जो आकस्मिक हों या उपर्युक्त कार्यों को सम्पन्न करने में उत्प्रेरक बन सकते हों।

प्रेस परिषद दोषी पाए गए समाचारपत्रों, समाचार एजेंसी, संपादक या पत्रकार को दंड स्वरूप चेतावनी दे सकती है, उनकी भर्त्सना कर सकती है या फिर निंदा कर सकती है। इसी प्रकार दोषी पाए गए किसी प्रशासनिक, पुलिस अथवा किसी अन्य अधिकारी को भूल सुधारने का निर्देश दे सकती है। इसके अलावा कोई और दंड देने का अधिकार प्रेस परिषद को नहीं है। यदि कोई उसके निर्णय पर अमल नहीं करता, तो परिषद उसे कोई और दंड नहीं दे सकती।

पत्रकारिता के मानक और दिशा–निर्देश

इसके लिए इन तीन बातों पर अमल करना नितांत आवश्यक है –

1. **सत्यता और निष्पक्षता –** समाचार सत्य होने चाहिए और उन पर की गई टिप्पणियां निष्पक्ष हों। असत्य, अर्द्ध सत्य, निराधार, तोड़–मरोड़कर लिखे जाने वाले समाचार और टिप्पणियां स्वस्थ पत्रकारिता के लिए अभिशाप हैं। पत्रकारिता को अन्य काम–धंधों की तरह नहीं किया जाना चाहिए। पत्रकार को यह नहीं भूलना चाहिए कि उसके कुछ सामाजिक सरोकार भी है।
2. **प्रकाशन से पहले पुष्टि –** किसी समाचार को प्रेस में भेजने से पहले उसकी सत्यता की जांच कर लेना अत्यावश्यक है। किसी व्यक्ति के विरुद्ध शिकायत के मामले में तो और भी सावधानी बरतने की जरूरत

है। समाचार के साथ उस व्यक्ति का पक्ष भी प्रकाशित किया जाना चाहिए, जिसके विरूद्ध समाचार प्रकाशित किया जा रहा है।

3. **मानहानि के मामलों में सावधानी** – किसी व्यक्ति विशेष या संस्था की मानहानि करने वाले समाचारों को प्रकाशित करने से पहले उसकी सत्यता की जांच अवश्य कर लेनी चाहिए, भले ही ऐसे समाचार जनहित में हों। अगर ऐसे समाचार से कोई जनहित न साधता हो, तो उसकी पुष्टि किए बिना उसे प्रकाशित न करना ही बेहतर होगा। किसी व्यक्ति विशेष से संबंधित ताजी घटना के बारे में समाचार देते समय उसके अतीत के आचरण को लेकर कोई टिप्पणी नहीं की जानी चाहिए। प्रेस अपनी भूमिका अधिक प्रभावशाली और निष्पक्ष रूप से निभा सके, इसके लिए भारतीय प्रेस परिषद ने कुछ दिशा–निर्देश तैयार किए है। उन दिशा–निर्देशों के अनुसार प्रेस को निम्नांकित बातों से बचना चाहिए

- तथ्यों को या सांप्रदायिक मामलों से संबंधित घटनाओं को तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत करना अथवा अफवाहों, संदेहों या अनुमानों पर आधारित समाचारों को सत्य मानकर उन पर टिप्पणी करना।
- किसी भी प्रकार के समाचारों या विचारों को प्रस्तुत करने में असंगत या अनर्गल भाषा का प्रयोग करना।
- सही या गलत शिकायत को दूर कराने के लिए हिंसक उपाय अपनाने के ढंग को प्रोत्साहन देना।
- किसी भी समुदाय की शिकायत को बढ़ा–चढ़ाकर प्रस्तुत करके सांप्रदायिक सद्भाव बिगाड़ना

प्रेस की स्वतंत्रता और विज्ञापन

एक–डेढ़ दशक पहले तक समाचारपत्रों में समाचारों तथा विचारों को महत्व दिया जाता था, किंतु अब अधिकतर समाचारपत्र न केवल विज्ञापनों को महत्व देने लगे हैं, बल्कि समाचार उनके लिए विज्ञापनों के बीच का स्थान भरने वाले 'फिलर' बन गए है। यह स्थिति प्रेस की स्वतंत्रता के लिए एक गंभीर खतरा है। देश के एक प्रतिष्ठित समाचारपत्र संस्थान के मालिक ने तो अपने संस्थान के संपादकों के सामने कह भी दिया कि 'समाचार तो फिलर भर होते हैं। समाचारपत्र विज्ञापनों से चलता है, समाचारों से नहीं। जिस मालिक की सोच यह रही है, उसके लिए यहां संपादक संस्थान की कितनी प्रतिष्ठा होती होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। विज्ञापन पाने के लिए समाचारपत्र मालिक विज्ञापनदाता की रूचि–कुरुचि का आदर करेगा, जिसकी मार अंततः समाचारों पर पड़ेगी। समाचारों के चयन पर विज्ञापनदाता का परोक्ष नियंत्रण रहने लगा है। दिल्ली से हिन्दी–अंग्रेजी में प्रकाशित एक साप्ताहिक के मालिक ने अपने संपदकों को स्पष्ट निर्देश दे रखा था कि उसकी प्रतिद्वंद्वी कंपनियों से

सम्बन्धित कोई भी समाचार प्रकाशित न किया जाए और संपादकों ने मालिक के इस आदेश को सिर–माथे लिया। यह साप्ताहिक पांच वर्ष पहले बंद हो चुका है।

स्वतंत्रता के पश्चात् रेडियो का विकास–प्रसार भूमिका, रेडियो ग्रामीण फोरम एवं स्थानीय प्रसारण, सामान्य एवं विशिष्ट श्रोता कार्यक्रम

रेडियो की विकास–यात्रा

15 अगस्त 1947 को देश की स्वतंत्रता के समय आकाशवाणी यद्यपि बाल्यावस्था में था, किन्तु स्वाधीनता के उत्साह एवं उत्सव में उसने महत्पूर्ण भागीदारी की। 14 अगस्त की रात को सत्ता के हस्तांतरण के विवरण और पंडित जवाहरलाल नेहरू के ऐतिहासिक उद्बोधन 'द ट्रिस्ट विद दी डेस्टिनी' को रेडियो ने असंख्य लोगों तक पहुंचाया। स्वतंत्रता के समय भारत में कुल 14 रेडियो स्टेशन थे जिनमें से 5 केंद्र देशी रियासतों में तथा 9 आल इंडिया रेडियो के केंद्र थे। आल इंडिया रेडियो में तब तक समाचार सेवा, विदेश प्रसारण, अनुसंधान विभाग, संगीत विभाग तथा एक से दूसरे स्टेशन तक रिले करने और रिकार्ड करने की प्रणाली जैसी सेवाएं एवं सुविधाएं विकसित हो चुकी थी। विभाजन के कारण तीन रेडियो स्टेशन – लाहौर, पेशावर और ढाका पाकिस्तान में चले जाने के बाद में केवल 6 केंद्र रह गए। इसके अलावा देशी रियासतों के सभी 5 स्टेशन मैसूर, बड़ौदा, हैदराबाद, औरंगाबाद और त्रिवेन्द्रम भारत के हिस्से में आए।

नियोजित विकास और रेडियो प्रसारण – नियोजित विकास की पद्धति अपनाने से विकास कार्यों में जनता की भागीदारी बढ़ाने के लिए रेडियो का महत्व और बढ़ गया। सामुदायिक विकास का रास्ता चुनने के बाद अपपढ़ जनता को विकास कार्यों के साथ जोड़ने का काम केवल रेडियो के जरिए ही संभव था। इस चुनौती को रेडियो ने बखूबी निभाया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में जहां एक ओर नए स्टेशन शुरू करने और ट्रांसमीटर लगाने पर बल दिया, वहीं रेडियो से वार्ता, परिचर्चा जैसे नए कार्यक्रमों के शुभारंभ से आर्थिक प्रगति का संदेश जन–जन तक पहुंचने की दिशा में कदम बढ़ाए गए। ग्रामीण लोगों के लिए विशेष कार्यक्रम प्रसारित किए जाने लगे। लगभग सभी केंद्रों से स्थानीय भाषाओं में आधे–आधे घंटे के ग्रामीण कार्यक्रम प्रसारित करने की परम्परा बन गई, जो आज तक कायम है।

आकाशवाणी – भारत के प्रसारण इतिहास में 3 अक्टूबर, 1957 के दिन का विशेष महत्व है जब ऑल इंडिया ने भारतीय नाम 'आकाशवाणी' अपनाया। यह नाम मैसूर रियासत के रेडियो संगठन से लिया गया जो 'आकाशवाणी' के नाम से कार्यक्रम प्रसारित कर रहा था। इसके बाद अंग्रेजी कार्यक्रमों तथा विदेश प्रसारण में आल इंडिया रेडियो नाम प्रयोग किया जाता रहा तथा हिंदी और अन्य भारतीय

भाषाओं के स्वदेशी प्रसारणों में 'आकाशवाणी' नाम प्रयोग किया जाने लगा। 'आकाशवाणी' शब्द सरल तथा भारतीय वाङ्मय में पहले से प्रचलित होने के कारण बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गया।

नेटवर्क – स्वतंत्रता के समय जिस प्रसारण संगठन के पास केवल 6 केन्द्र थे, 1998 के अंत तक उसके केंद्रों की संख्या 195 हो गई। इनमें 183 पूर्ण केंद्र हैं, 9 रिले केंद्र और तीन विविध भारतीय केंद्र हे। ट्रांसमीटरों की कुल संख्या 302 है जिनमें 144 मीडियम वेव, 55 शॉर्टवेव तथा 103 एफ एम ट्रांसमीटर है। आकाशवाणी के कार्यक्रम 97.3 प्रतिशत जनसंख्या तक और 90 प्रतिशत क्षेत्र में पहुंचते है।

आकाशवाणी का कार्यक्षेत्र

समाचार सेवा – सच तो यह है कि भारत में रेडियो प्रसारण की शुरूआत ही समाचार प्रसारित करने के उद्देश्य से हुई। पहला समाचार बुलेटिन 23 जुलाई, 1927 को मुम्बई से प्राईवेट रेडियो स्टेशन से प्रसारित हुआ। रेडियो की समाचार शाखा अगस्त, 1927 में अस्तित्व में आई। बाद में समाचार तथा सामयिक विषयों के कार्यक्रमों के निर्माण, समन्वय एवं प्रसारण के लिए समाचार सेवा प्रभाग बनाया गया। शुरू में अंग्रेजी तथा हिन्दुस्तानी में ही समाचार बुलेटिन प्रसारित किए जाते थे किन्तु धीरे–धीरे सभी भारतीय भाषाओं, कुछ बोलियों और प्रमुख विदेशी भाषाओं में भी समाचार प्रसारित होने लगे। इस समय (1999) समाचार सेवा प्रभाग 29 घंटे और 29 मिनट की अवधि के कुल 314 समचार बुलेटिन प्रति दिन प्रसारित कर रहा है।

विदेश सेवा – विदेश सेवा प्रभाग विदेशों में भारत की छवि सुधारने तथा वहां उसे भारतीयों को देश से जोड़े रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसकी शुरूआत दूसरे विश्वयुद्ध से ही हो गई थी और तब यह समाचार सेवा प्रभाग का हिस्सा था। 1948 में इसे समाचार सेवा प्रभाग से अलग कर दिया गया और इसे नया स्वरूप प्रदान किया गया। किंतु इसके लिए समचार बुलेटिन तैयार करने का दायित्व आज तक समाचार सेवा विभाग निभा रहा है।

विविध भारती एवं विज्ञापन सेवा – देशभर में मनोरंजन प्रधान हिंदी कार्यक्रम उपलब्ध कराने के उद्देश्य से द्वितीय योजना में विविध भारती सेवा प्रारंभ की गई। इसमें मुख्यतया फिल्मी गीत तथा अन्य तरह के हल्के–फुल्के प्रोग्राम प्रस्तुत किए जाते हैं। श्रोताओं की भागीदारी के कारण यह सेवा अत्यंत लोकप्रिय है। इस चैनल पर मुख्य राष्ट्रीय समाचार बुलेटिन भी प्रसारित होते है। हिंदी के प्रसार में विविध भारती सेवा का काफी योगदान रहा है।

VPM CLASSES

युववाणी – देश के युवाओं में चेतना लाने तथा उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़े रखने के विचार से 23 जुलाई, 1969 को आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र से एक नई सेवा युववाणी यानी युवाओं की आवाज शुरू की गई। इसके लिए अलग चैनल दिल्ली 'डी' की स्थापना की गई। बाद में यह सेवा कई अन्य केंद्रों से भी प्रसारित की जाने लगी। इस चैनल की विशेषता यह है कि इसमें जहां तक संभव हो, केवल युवक–युवतियों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम ही प्रसारित किए जाते है। इनमें अधिक संख्या कॉलेजों व विश्वविद्यालयों के छात्र–छात्राओं की होती है। इस चैनल से भारतीय व पश्चिमी संगीत के अलावा समसामयिक विषयों पर चर्चाऐं तथा अन्य युवकोचित कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते है। एफ एम चैनल शुरू होने के बाद युववाणी की चमक कुछ कम हो गई है।

राष्ट्रीय चैनल – देश भर में एक साथ ही चैनल से प्रसारण उपलब्ध कराना राष्ट्रीय चैनल का मुख्य उद्देश्य है। यह चैनल 1988 में शुरू हुआ। यह सेवा केवल रात्रि के समय यानि शाम 6.50 बजे से सुबह 6.10 के बीच देश के 64 प्रतिशत क्षेत्र और लगभग 76 प्रतिशत जनसंख्या के लिए उपलब्ध है। इसके कार्यक्रमों में ज्ञान तथा मनोरंजन का संतुलन रहता है। इन कार्यक्रमों में सांस्कृतिक विविधता तथा भारतीय जीवन मूल्यों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जाता है। इस चैनल पर बारी–बारी से हिंदी और अंग्रेजी में समाचार भी प्रसारित किए जाते हैं। इस चैनल पर साहित्यिक कार्यक्रमों को भी पर्याप्त महत्व दिया जाता है।

संगीत, नाटक एवं रूपक – आकाशवाणी के प्रारंभिक दौर में संगीत को विशेष महत्व नहीं दिया गया किंतु स्वतंत्रता के बाद विशेषकर वी.वी. केसकर के सूचना एवं प्रसारण मंत्री बनने के बाद भारतीय शास्त्रीय और सुगम संगीत को महत्वपूर्ण स्थान मिलने लगा। सच तो यह है कि शास्त्रीय संगीत को पुनर्जीवित करने तथा उसे लोकप्रियता व प्रतिष्ठा दिलाने में रेडियो की उल्लेखनीय भूमिका रही है।

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण – विकास तथा जनकल्याण के कार्यक्रमों की जानकारी आम लोगों तक पहुंचाने मे रेडियो ने उपयोगी भूमिका निभाई है। छोटे परिवार का संदेश लोकप्रिय बनाने के लिए आकाशवाणी से देश की सभी भाषाओं और बोलियों में परिवार कल्याण कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। 22 केंद्रों में परिवार कल्याण के विशेष एकांश काम कर रहे है। इन विषयों पर हर महीने 11,000 मिनट से अधिक अवधि के 8500 कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। प्रत्येक केंद्र से सप्ताह में एक बार 15 मिनट का कार्यक्रम स्वास्थ्य मंच प्रसारित किया जाता है। इन कार्यक्रमों में शिक्षा, कल्याण तथा आंत्रशोध, पेचिश और पोलियो जैसे रोगों के इलाज व रोकथाम सें संबंधित जानकारी दी जाती है। डॉक्टरों तथा

VPM CLASSES

विभिन्न विकारों से पीड़ित व्यक्तियों से भेंटवार्ता पर आधारित कार्यक्रम काफी असरदार सिद्ध हुए है। एड्स जैसी घातक बीमारियों के बारे में धारावाहिक कार्यक्रम भी प्रसारित किए जाते है।

कृषि एवं गृह कार्यक्रम – कृषि तथा उससे संबंधित व्यवसायों की नवीनतम जानकारी ग्रामीण जनता तक पहुंचाने के लिए आकाशवाणी के लगभग सभी केंद्रों में 'फार्म एंड होम' कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। इसके लिए हर केंद्र में कृषि एवं गृह एकांश स्थापित किए गए है। प्रत्येक केंद्र में प्रसारित 60 से 100 मिनट की अवधि के इन कार्यक्रमों में कृषि की नई तकनीकों पर सूचना देने के साथ–साथ पर्यावरण, सामाजिक वानिकी, सिंचाई, गरीबी उन्मूलन परियोजनाओं, स्वास्थ्य, स्वच्छता, साक्षरता जैसे विषयों पर भी प्रकाश डाला जाता है। इन कार्यक्रमों में ग्रामीण विकास, पंचायती राज की भूमिका तथा गांवों की महिलाओं की दशा सुधारने पर भी जोर दिया जाता है।

विशेष श्रोता कार्यक्रम – आकाशवाणी विशेष श्रोता वर्गों के लिए भी कार्यक्रम प्रसारित करता है जिनमें इन वर्गों की रूचि तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाता है। इनमें महिलाएं, श्रमिक, किसान, बच्चे आदि वर्ग शामिल है। महिलाओं के लिए दिन के समय कार्यक्रम दिए जाते हैं क्योंकि उस समय गृहणियां घर के काम–काज से मुक्त हो जाती है। इन कार्यक्रमों में महिला श्रोताओं की खुद की भागीदारी पर ज्यादा जोर दिया जाता है। ऐसे कार्यक्रमों में व्यंजन बनाने से लेकर महिला समस्या पर गंभीर परिचर्चा जैसी विधाएं सम्मिलित रहती ळें

शोध प्रविधि एवं जनसंचार शोध

जनसम्पर्क जनता को प्रभावित करने और अभिमत निर्माण करने की एक कला है। केवल इतना ही नहीं जनसम्पर्क इस बात को भी जानने का प्रयास करता है, किसी विशेष परिस्थिति और नीति पर कैसे और किस प्रकार अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करती है। इन सभी बातों का वैज्ञानिक अध्ययन, अधिक तथ्यपूर्ण आँकड़ों द्वारा प्राप्त किया जाता है।

अनुसन्धान, ज्ञान, सूचना और सम्प्रेषण–विकास के लिए किया जाता है। जनसम्पर्क में अनुसन्धान–दृष्टिकोण इन बातों पर निर्भर है– (1) शोध की नीति (2) स्रोत तथ धन आदि (3) प्रशिक्षण (4) समस्याएँ तथा अनुसन्धान का क्षेत्र (5) विधि और तकनीक (6) परिणाम की जानकारी तथा मूल्यांकन।

अनुसन्धान या शोध नीति

जनसम्पर्क में अनेक राष्ट्रीय और प्रबन्ध–विकास हेतु और विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हमें जनता की समझ, प्रेरणा तथा सहयोग की आवश्यकता होती है। उन्हें विकास कार्य में सहभागी बनाने

की प्रक्रिया को दृष्टिगत रखना होता है। सभी स्थितियों में सूचना और जनसम्पर्क विकास–प्रक्रिया का आधार बिन्दु होना चाहिए। जनसम्पर्क शोध में विकास की नीतियों तथा प्रक्रियाओं का जनता ने कितना, कैसा स्वागत किया है, तथा इन नीतियों तथा इन नीतियों और कार्यक्रमों के प्रति उनका कितना लगाव है, आदि का अध्ययन की इसका मुख्य उद्देश्य होता है। इस शोध की व्यावहारिकता नीति–निर्माताओं, प्रशासकों, तथा जनसम्पर्क–कर्त्ताओं के लिए बहुत ही उपयोगी होती है। जनसम्पर्क शोध केवल जनसम्पर्क की सीमा विकास और इस विषय की समृद्धि के लिए ही नहीं किया जाता है बल्कि यह नीति तथा कार्य से प्रतिपादित भी होता है।

भारत तथा अन्य विकासशील देशों मे जहाँ सीमित स्रोतों द्वारा कार्य संचालन करना पड़ता है, वहाँ सीमित अर्थव्यवस्था तथा प्रशिक्षित ननशाक्ति का अभाव भी शोध कार्य में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देता है, क्योंकि इतना अधिक धन हमारे पास नहीं होता है जो अनुसन्धान की शत–प्रतिशत उपलब्धि पर उदारता से व्यय किया जा सके। सरकारी संस्थानों में जहाँ अनुसन्धान एवं शोध की सुविधा है वहाँ इसकी पुनरावृत्ति होती रहती है। इसके लिए आवश्यक है कि सरकारी क्षेत्र में जहाँ जनसम्पर्क शोध किये जाएँ वहाँ यह ध्यान रखा जाये कि पुनरावृत्ति न हो अर्थात् अगर एक विभाग ग्रामीण क्षेत्रों में गेहूँ के व्यापार के विषय पर सर्वेक्षण या शोध कर रहा है तो दूसरा जनसम्पर्क विभाग किसी अन्य विषय पर शोध कार्य करे। एक ही कार्य के शोध या सर्वेक्षण के विषय पर दोहरी धनराशि व्यय न की जाये। इसलिए जरूरी है कि जनसम्पर्क विभाग राष्ट्रीय स्तर पर तथा विकासशील देश अपने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जनसम्पर्क विभागों में आपसी–प्रदान करते रहें। अगर सम्भव हो सके तो किसी विषय पर सामूहिक शोध 'कोआपरेटिव रिसर्च' भी किया जा सकता है। इसके लिए नीति–निर्धारण भी हो सकता है।

साधनों की कमी को ध्यान में रखकर की जनसम्पर्क की किसी शोध प्रक्रिया, सर्वेक्षण या शोध की योजना बनाई जानी चाहिए। विभिन्न विभागों, संस्थानों तथा शोध–संगठनों का समन्वित सहयोग इन कार्यों में बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है। जैसे–प्रेरणा शोध (Motivation research) जन अभिमत शोध (Opinion research) तथा बाजार शोध (Market research)। इन

शोध कार्यों का जनसम्पर्क में विशेध महत्व होता है और इनकीउपयोगिता, इनके विषय, प्रकृति तथा आकार आदि पर निर्भर करती है। सरकारी जनसम्पर्क के क्षेत्र में जन अभिमत शोध (पब्लिक ओपीनियन रिसर्च) का विशेष महत्व है। जैसे, बैंकों के राष्ट्रीयकरण पर जनमत क्या रहा, आदि। पर

ऐसे शोध कर्यों की राष्ट्रीय स्तर पर ही उपयोगिता होती है, परन्तु उद्योग और व्यवसाय के मार्केट अनुसन्धान जनसम्पर्क विभाग का कार्य होगा।

प्रेरणा शोध (मोटीवेशन रिसर्च) में उन विधियों और तकनीकों को खोज की जाती है जिनसे जनता किसी कार्य विशेष या नीति विशेष अथवा उत्पादन के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है। यह सब उनकी जीवन–पद्धति, वातावरण तथा मनोवैज्ञानिक स्तर पर निर्भर करता है। इसके लिए दक्ष तथा विशेषज्ञ शोधकर्त्ता या अनुसन्धानकर्त्ता होना चाहिए। प्रेरणा शोध जनसम्पर्क कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने में सर्वाधिक सहायक सिद्ध होता है। जबकि न अभिमत सर्वेक्षण तथा शोध विभिन्न सीमाओं में बँधककर अत्यन्त–कुशलतापूर्वक विषय–विशेषज्ञों के निर्देशन में ही सम्पन्न हो सकता है। परन्तु जनसम्पर्क के सीमित साधनों तथा अन्य अनेक कार्यक्रमों के लिए शोध कार्य इतना सरल और सहज नहीं हैं।

शोध के स्रोत

पिछली सूचनाओं और आकड़ों से शोधकर्त्ता का कार्य सरल हो जाता है। इस प्रकार की गत सूचनाएँ और आंकड़े हमें सर्वेक्षणों से प्राप्त होते हैं। इन सर्वेक्षणों में स्थानात्मकता, गुणात्मकता तथा विभिन्न स्रोतों का उल्लेख रहता है। इन स्रोतों की जानकारी हमें सर्वेक्षणों से प्राप्त होनी चाहिए, जैसे–

1. शोध कार्यक्रम की निर्देश–तालिका तथा नीतियाँ जिनसे शोध कार्यक्रम संचालित किया गया है।

2. शोधकार्य जो हमारे शोध से सम्बन्धित चल रहा है, उसका भी अध्ययन करना चाहिए, क्या हमारे निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार चल रहा है।

3. उन संस्थानों की संरचना कैसी है जो इस शोध कार्य में लगे हुए हैं। उनकी स्थिति, प्रभाव, सहशक्ति तथा कमजोरियाँ ज्ञान होनी जरूरी है।

4. जनसम्पर्क शोधकार्य के लिए भौतिक तथा मानवीय स्रोत आवश्यक है। मानवीय स्रोत कितने निपुण (Skilled) हैं। या नहीं, या मौखिक या लिखित किस प्रकार से शोध में सहायता कर सकते हैं। अर्थात् उनसे सूचना लेने देने के लिए क्या केवल मौखिक वार्तालाप ही उपयुक्त रहेगा। अगर वह अशिक्षित है तो, अनुवाचक की भी आवश्यकता पड़ेगी। भौतिक स्रोतों में साधन, सुविधाएँ प्रकाशन, माइक्रोफिल्म तथा अन्य उपलब्ध आँकड़े प्रयुक्त किये जाते हैं।

5. उपलब्ध स्रोत की उपयोगिता, भविष्य में अन्य स्रोतों का विकास भी शोध–अनुभव से प्राप्त हो जाता हैं अनेक ऐसे स्रोतों का भी पता लगता है जिन्हें अभी तक प्रयोग में नहीं लाया गया है जनसम्पर्ककर्त्ता अधिक परिश्रम करके यदि स्रोतों का विकास कर लें तो नवीनता और लाभ दोनों की

VPM CLASSES

होंगे। अनुसन्धान क्षमता में भी स्रोतों का विकास करने की आवश्यकता जनसम्पर्क क्षेत्र को भविष्य मे पड़ेगी, जब समाज अधिक जटिल होता चला जाएगा। जैसे मानवीय स्रोतों में क्षेत्रीय कर्मचारी, कारखाने के अन्दर काम करने वाले श्रमिक, विकास कार्यों मे रत लोग, विभिन्न पदों तथा कार्यों में निमुण तथा अनिपुण लोगों की अनेक श्रेणियाँ बनानी पड़ती हैं। उनके अनुभव एवं प्रतिक्रियाएं उनके संगठनों से ही या व्यक्तिगत रूप से जुटानी पड़ती है।

6. **वित्त व्यवस्था–** विकसित देशों के जनसम्पर्ककर्त्ताओं की अपेक्षा विकासशील देशों के जनसम्पर्ककर्त्ताओं के सम्मुख किसी भी शोधकार्य एवं सर्वेक्षण के लिए आर्थिक कठिनाई का होना स्वाभाविक है। अतः जनसम्पर्ककर्त्ताओं तथा कम्यूनिकेशन क्षेत्र में लगे लोगों को जो भी अनुसंधान या शोध करना हो उसके लिए वार्षिक योजना में नियोजित बजट की राशि स्वीकृति करा ले।

जब शोध का विषय और कार्यक्रम आदि निर्धारित कर लिया जाए तो राशि के अनुसा उसको विभिन्न अंगो तथा विभागों में बाँट लेना चाहिए, जैसे सूचनाओं और जानकारियों पर कितना व्यय करता है, प्रचार और जनअभिमत कहाँ, कैसा और किन लोगों में जाकर करता है? यदि साधन पर्याप्त नहीं हो तो क्षेत्र को सीमित कर लें, आदि। विभिन्न देशों तथा जनसम्पर्क विभागों ने विभिन्न समस्याओं के उत्पन्न होने पर किन–किन साधनों और कार्यों से उनका उल निकाला था उनकी भी जानकारी जनसम्पर्ककर्त्ता को होनी चाहिए। विशेष कर प्रचार कार्य और जन अभिमत निर्माण में यह व्यावहारिक उपलब्धियाँ हमारा दिशा निर्देश करती हैं।

शोध के लिए विस्तृत और वास्तविक वजट बना लेना बहुत जरूरी है। आन्तरिक और बाहय स्रोत की जानकारी, अन्य संस्थानों का सहयोग, लम्बी अवधि की योजना, सभी विषयों पर शोधकार्य का एक रेखांकन कर लेना नितान्त आवश्यक है ताकि सीमित धनराशि में हमें इच्छित परिणाम प्राप्त हो सकें।

शोध प्रक्रिया

समस्या स्थापना : समस्या स्थापना किसी भी शोधकार्य का सबसे पहला काम है। जनसम्पर्क क्षेत्र में इसकी परिभाषा से ही शोध के लिए अनेक ऐसे विषय प्राप्त हो सकते हैं जिनपर सर्वेक्षण किया जा सकता है या जिनपर शोध करने की पूरी गुन्जाइश है।

इनका सबसे अच्छा उदाहरण स्टर्लिंग–प्रशिक्षण एवं विकास–संस्थान के निदेशक डा. एडवर्ड जे. राबिन्सन ने दियार है। वह मानते हैं कि जनसम्पर्क एक सामाजिक तथा व्यावहारिक विज्ञान है जिसका निम्नलिखित है–

1. विभिन्न लोगों के व्यवहार, प्रवृत्तियों आदि का मापन और मूल्यांकन करना।

VPM CLASSES

2. मैनेजमेंट को विभिन्न उद्देश्य प्राप्ति के लिए जन अभिमत का निर्माण करने, उसके द्वारा उत्पादित वस्तु, योजना, नीतियों तथा व्यवहार को जन स्वीकृति दिलाने में सहायता करना।

3. कम्पनी के उद्देशन की प्राप्ति के लिए लोगों में रूचि जागृत करने के साथ आवश्यकता की उत्पति करना।

4. ऐसे कार्यक्रमों का विकास करना, लागू करना, तथा उनका मूल्यांकन करना जिन्हें जनता समझ सके और अपनी स्वीकृति दे।

अब इन चार प्रकार की परिभाषाओं में हमें शोध के लिए विषय और क्षेत्र मिल जाते हैं जैसे पहली परिभाषा में जनसम्पर्क को व्यावहारिक सामाजिक विज्ञान कहा गया है। इसका अर्थ है कि जनसम्पर्क लोगों के व्यवहारों का अध्ययन करने वाला एक सामाजिक विज्ञान है। इससे लगता है कि यह विज्ञान लोगों के व्यवहारों में बदलाव ला सकता है। अपनी कम्पनी, संगठन तथा सरकार के लिए अगर वह चाहे तो जन अभिमत तथा जनता का व्यवहार अपने पक्ष में कर सकता है। इसके लिए उसे सामाजिक और विभिन्न व्यावहारिक विज्ञानों का भी साथ–साथ अध्ययन करना होगा।

दूसरी परिभाषा में लोगों के रवैये का मापन तथा मूल्यांकन करता है। इसके लिए सर्वेक्षण किये जा सकते हैं कि अमुक नीति या कार्यक्रम के प्रति लोगों का क्या रवैया रहा? अमुक जनता या समुदाय का संगठन या मैनेजमेंट की किसी नीति के प्रति क्या रूख है? उन्होंने इसे स्वीकार किया है या कर्मचारियों में उसके प्रति रोष है, या प्रसन्नता, आदि का अध्ययन किया जाता है। इन कार्यों के लिए सर्वेक्षण करना अत्यन्त उपयोगी रहता है।

अन्य परिभाषाओं में जनसम्पर्क का मुख्य कार्य किसी कार्यक्रम का विकास करना, लागू करना, मूल्यांकन करना है, कि जनता ने इसे कितना अधिक समझा तथा स्वीकारा है।

सर्वेक्षण कार्य जनसम्पर्ककर्त्ता को शोध करने में सहायता देता है। सम्प्रेषण के विभिन्न माध्यमों का हम इस शोध कार्य में प्रयोग करते हैं। जनसम्पर्क में शोध का तात्पर्य केवल शोध के परिणाम की ओर ध्यान देना होता है, उनको लागू करने का कार्य जनसम्पर्क के व्यावसायिक लोगों (पब्लिक रिलेशन्स प्रेक्टीशनर्स) पर छोड़ दिया जाता है। शोध के लिए हम अनेक शोध विधियों का प्रयोग करते हैं। यह स्थान, स्रोत तथा समस्या स्थापना के बाद की बात है और देशकाल एवं साधनों पर निर्भर करती है। समस्या केवल परिभाषा से प्राप्त हो या आवश्यक नहीं है। साधारण व्यवहार कार्य (जेनरल एजोच) द्वारा भी समस्या की स्थापना की जा सकती है। जनसम्पर्क शोधकर्त्ता को भारत के सन्दर्भ में शोध समस्या की स्थापना करते समय इन बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. अनुसन्धान या शोधकार्य विशिष्ट प्रचार के लिए हो, 'संक्षिप्त' और 'सारगर्भित' हो, जहाँ तक सम्भव हो इसे स्थानीय रूप दिया जाए तथा इसमें क्षेत्रीय कार्य (फील्ड वर्क) को प्रधानता दी जाए। इस प्रकार का शोधकार्य किसी नीति या कार्य के प्रति संगठन के अन्दर भी सम्भव है।

2. शोध की एकात्मक पकड़ हो परन्तु उसे विभिन्न पक्षों की जानकारी मिले। जैसे जनसंख्या सर्वेक्षण, इसमें केवल जनसंख्या की गिनती ही नहीं होती, इसके उनका सामाजिक, पारिवारिक स्तर, शिक्षा, आर्थिक सम्पन्नता, रहन–सहन आदि की जानकारी भी उपलब्ध हो जाती है।

3. शोध संख्यात्मक नहीं बल्कि गुणात्मक होना चाहिए।

शोध का क्षेत्र

जनसम्पर्क में सामान्य जनता या विशिष्ट जनता इसमें प्रत्यक्ष (Direct Public) और परोक्ष रूप से सम्बन्धित जनता (Indirect Public) होती है। यही जनता उसके शोध या सर्वेक्षण के क्षेत्र मे आती है। भारत तथा अन्य विकासशील देशों में जनसम्पर्क का उद्देश्य जनता का विकास करना है। परिवर्तन ही विकास का आधार है। हमें जनसम्पर्क के अनेक माध्यमों का परिवर्तन के साथ जो समाज और जनता में हम चाहते हैं, बड़ा तालमेल रखना होगा। अगर कम्यूनिकेशन के माध्यमों द्वारा ऐसी सूचनाएँ या गलत जानकारियाँ जनता के पास चली गई हैं जिनसे हड़तालें भड़क उठी हैं, भाषायी या धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक दंगे फैल गए हैं अथवा लोगों की धारणा और अभिमत नीतियों और कार्यक्रमों के विरूद्ध हो गई हैं तो इस परिवर्तन और विकास का पक्ष धूमिल हो जाएगा और समाज विघटन की ओर अग्रसर होगा।

जैसा कि शोध के क्षेत्र में हम देख रहे है, भारत में शोधकर्त्ताओं या अनुसन्धानकर्त्ताओं ने भी बिना किसी हिचक के पाश्चात्य तकनीकों को जैसे उनकी संस्थाओं, संरचनाओं, कार्यक्रमों, सूचनाओं, पुस्तकों तथा अन्य अनेक औजारों और सामग्री को ज्यों का त्यों बिना अपने देश के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा तकनीकी क्षेत्रों के अध्ययन के स्वीकार कर लिया है। यही कारण है जनसम्पर्क और कम्यूनिकेशन के क्षत्र में हमें भारतीयता का अभाव प्रत्येक स्थान और व्यवहार में नजर आता है जो कि देश के विकास के लिए का अशुभ लक्षण कहा जा सकता है। अब इस पर सभी क्षेत्रों में पुनः विचार किया जा रहा है।

शोध और सर्वेक्षण के लिए किस भाषा का प्रयोग करें, यह भी एक समस्या है, विशेषकर भारत में, क्योंकि यहाँ अनेक प्रदेशों की अनेक भाषाएँ हैं। विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक सिम्बल है। एक समाज का एक सिम्बल अशुभ है तो दूसरे क्षेत्र में जाकर उसका अर्थ्ज्ञ शुभ में बदल जाता है। कम्यूनिकेशन

इतना विकसित नहीं है। यहाँ की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग जानकारियों के अभाव में जीता है और न ही जानकारियों के प्रति उनकें रूचि उत्पन्न की गई है। बहुभाषी समाज भी हमारे देश में कम्यूनिकेशन के विस्तार और विकास में आर्थिके एवं भौगोलिक कठिनाई उत्पन्न किए हुए हैं। विभिन्न भाषाओं के श्रोताओं के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम तैयार करने होते हैं और सीमित अर्थ व्यवस्था में यह सब ऊँचे प्रतिशत तक कर पाना सम्भव नहीं हो पाता।

जनसम्पर्क के शोध के लिए हम विशिष्ट जनता, तथा अपने सम्पर्क के लोगों को इस कार्य के लिए चुन सकते हें। जैसे एक नए प्रकार की खाद का चलन किया गया हो तो उसके प्रति लोगों की क्या अभिमति बनी, इसे जानने के लिए हमें इसके प्रयोगकर्त्ता किसानों को चुनना होगा। जैसे बिहार में हमारी खाद बीस जिलों में बिकती है तो हम आदर्श (माडल) के रूप में किसी एक जिले के किसानों को चुन लें और उस स्थान पर सीमित किसानों में ही हम अपना सर्वेक्षण और शोध का कार्य पूरा करें। जैसे उस खाद के उपयोग से किसानों में क्या प्रतिक्रिया हुई, उनकी उपज में कितनी वृद्धि हुई, या उन्हें हानि उठानी पड़ी, अन्य खादों की तुलना में इसका मूल्य अनुपात, रखरखाव, उपलब्धि, रासायनिक उपयोगिता, अनुपयोगिता आदि के बारे में जाना जा सकता है। इस शोध के लिए कौन सा माध्यम चुना जाएगा, कौन सा माध्यम अधिक प्रभावी होगा? यह उस स्थान के शोध उद्देश्य, कार्यक्रम तथा प्रोजेक्ट पर निर्भर करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक तथा परम्परागत माध्यमों का प्रयोग किस–किस अनुपात में सम्भव होगा? उस स्थान तक उस माध्यम की पहुँच के स्थान और उसके पीछे होने वाला व्यय? दोनों प्रकार के अति आधुनिक और परम्परागत माध्यमों के समन्वय से लाभ लठाया जा सकता है या यहीं? विभिन्न विशिष्ट माध्यम, विशिष्ट उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रयोग करना जरूरी है, आदि। केवल इतना ही नहीं हमें शोध के लिए उस कार्य विशेष के दक्ष लोगों, जैसे खाद के प्रकार विशेषज्ञ, कृषि–पण्डितों की राय, विभिन्न विकास अधिकारियों का मत, प्रशासकों का रवैया आदि सभी का अध्ययन करना पड़ता है। सभी एक सीमित क्षेत्र में किया गया शोध सर्वउपयोगी बन सकेगा।

शोध-प्रशिक्षण

जनसम्पर्क के क्षेत्र में शोधकर्त्ता के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना नितान्त अनिवार्य है। शोध के विभिन्न साधन और सामग्रियों का विधिवत् उपयोग, सूचना एकत्रीकरण, उनका प्रस्तुतीकरण तथा विवेचन करना जरूरी है। इसके लिए जिन लोगों को प्रशिक्षित किया जाये उनका चुनाव भी बड़ी समझदारी से किया जाना चाहिए।

एक विषय और संस्कृति मे पलकर बड़ा हुआ तथा एक ही वातावरण में काम करने वाला शोधकर्त्ता दूसरे क्षेत्र और वातावरण में काम करने वाला शोधकर्त्ता दूसरे क्षेत्र और वातावरण मे सरलतापूर्वक कार्यक्रम नहीं चला पाएगा। यहाँ पर मेडिकल का एक उदाहरण देना सामयिक होगा मेरे एक मित्र चिकित्सक बिहार में मिथिला वातावरण में पले, बड़े हुए तथा वहीं पर मेडिकल की प्रैक्टिस करने के बाद इलाहाबाद चले गये। वहाँ इनके लिए रोग पहचानना तो आसान हो गया पर वह मरीजों को खानपान की सलाह नहीं दे पाते थे, क्योंकि बिहार के खानपान और इलाहाबाद के खानपान में बहुत अन्तर है। अतः कई महीनों तक उन्हें वहां के सामाजिक और सांस्कृतिक वावरण का अध्ययन करना पड़ा तब कहीं जाकर उनकी प्रैक्टिस का विकास हुआ तथा उन्हें लोकप्रियता मिली। एक ही स्थान तथा प्रोजेक्ट में काम आने वाले नियम तथ सिद्धान्त दूसरे क्षेत्र में वाले, दूसरी संस्कृतिक में पले लोगें के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। अमरीकी कार कम्पनी द्वारा किया गया रिसर्च भारत की हिन्दुस्तान मोटर्स कम्पनी की रिसर्च के लिए न उपयुक्त होगा, न सामयिक ही।

सामाजिक विज्ञानों के मूल तत्व और सिद्धान्तों में प्रायः देशों में समानता है– क्योंकि मानव व्यवहार मूलतः समन ही होते हैं। स्थान और समय के अनुसार जो परिवर्तन होते हैं वह इतने अन्तर्विरोधी नहीं होते कि एक स्थान पर जो सिद्धान्त प्रयोग किये गये हैं वह थोड़े बहुत रद्दोबदल के बाद दूसरे क्षेत्र और समाज पर लागू न हो सकें। जनसम्पर्क प्रशिक्षण जहाँ भी दिया जाये वहाँ पाठयक्रम में क्षेत्रीय कार्य (Field work) तथा शोध अनिवार्य होना चाहिए। स्थानीय सीमाबद्धता रिचर्स के क्षे में बहुत बड़ी रूकावट सिद्ध नहीं हुई है। जनसम्पर्क के शोध में इतनी क्षमता हो कि वह अपनी उपलब्धियों को जनसम्पर्क के व्यावसायिक लोगों (प्रेक्टीशनर्स) तक प्रभावशाली तरीके से पहुँचा दे जिससे कि शोध की उपयोगिता का लाभ उठाया जा सके। शोध क्यों कर रहा है, कैसे कर रहा है और उसमें क्या कर रहा है? यह सब उनके मस्तिष्ठ में स्पष्ट होना चाहिए।

शोध विधियाँ

'पूर्व पाइलेट स्टडी' शोध कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक होती है। बिना इसके शोध कार्यक्रम की रूपरेखा तथा उपयोगिता स्पष्ट नहीं हो जाती है। प्रभावी 'साम्पलिंग' शोध की जान होती है। इससे शोध कार्य को गति मिलती है। व परिणाम प्राप्ति में सहायता। सैम्पल उपलब्धियाँ शोध प्राप्ति का आधार होता है।

सैम्पलिंग की तकनीक का आधार गणित है। अभिमत अध्ययन (ओपीनियन्स फाइडिंग) के प्रकार प्रसिद्ध हैं– जिस समूह का अध्ययन करना हो उसके सभी सदस्यों का व्यक्तिगत रूप से इन्टरव्यू

लिया जाये अथवा उस समूह का जो लोग प्रतिनिधित्व करते हों उनका (नमूना) सैम्पल चुन लिया जाये। छोटे समूह मे पहली इन्टरव्यू वाली पद्धति उचित रहती है जबकि विशाल ग्रुप के लिए प्रतिनिधित्व वाले सैम्पल चुनाव की तकनीक।

सैम्पल का चुनाव भी दो प्रकार के किया जाता है।

(i) रेन्डम सैम्पल : इसमें उन लोगों को जिनका इन्टरव्यू लिया जाता है उनका चुनाव गणित–विधि से किया जाता है। जैसे : माना ए संगठन के सौ सदस्य हैं, किसी विषय पर उनकी सम्मति जाननी है, तो वर्णक्रमानुसार सब सदस्यों के नाम लिखकर उनमें 10, 20, 30, 40, 50 वें इसी प्रकार हर दसवें सदस्य को ले लिया जायेगा और इस रेन्डम सैम्पल द्वारा जो परिणाम निकलेगा वह उस समुदाय या समूह या संगठन के सदस्यों की राय जानने में सहायक होगा।

(ii) अनुबन्धन सैम्पल (कोटा–सैम्पल) : में एक बड़े संगठन के सदस्यों का आयु समूह, आय, व्यवहार, शिक्षा, पद आदि के आधार पर यह सैम्पल लिया जाता है। सबसे, इस वर्ग के अनुसार समूह बनाकर सैम्पल लिए जाते हैं और इसमें से हर समूह के पाँचवें (जो भी संख्या नियत की जाए) सदस्य का इन्टरव्यू लेकर परिणाम निकाला जाता है।

सैम्पल का आकार, परिणाम तथा उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर नियत किया जाता है। जैसे चुनाव परिणाम का अनुमान तीन–चार सौ व्यक्तियों की राय जानने के बाद लगा लिया जाता है। इसमें विभिन्न समूह (विभिन्न आयु, शिक्षा व्यवसाय स्तर और पद) के अनुसार पहले छांट लिए जाते हैं। सैम्पल का जितना विस्तार होगा, परिणाम अच्छा निकलेगा। पर अशुद्धि होने का भय उतना ही अधिक होगा। संख्यात्मक शोध क्वान्टिटेटिव रिसर्च (Quantitative Research) का एक अपना महत्व है पर अधिक जोर हमें गुणात्मक शोध (Qualitative Research) की ओर देना चाहिए।

शोध करने से पूर्व हमें शोध की विधियों का चुनाव ठीक प्रकार से कर लेना चाहिए। विभिन्न विधियों, तकनीकों को उस क्षेत्र के सामाजिक संगठन के परिप्रेक्ष्य में देख लेना शोधकर्त्ता के लिए आवश्यक है। उस स्थान का कम्यूनिकेशन अध्ययन करते हुए वहाँ की जन व्यवहार की सीमा और पद्धति जान लेना उपयोगी होगा। इसके पश्चात् ही कौन सी विधि अनुसन्धान में उपयोगी होगी, जाना जा सकता है।

समूह का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक अध्ययन करना भी आवश्यक है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि जनसम्पर्क के विषय को समाजशास्त्र अर्थशास्त्र, भाषायी विज्ञानों, मनोविज्ञान अथवा मानवशास्त्र विज्ञान का भी उस समूह को दृष्टि में रखकर अध्ययन करना होगा। हाँ जनसम्पर्क के शोधकर्त्ता को

VPM CLASSES

अपने श्रोताओं, वहाँ की स्थितियों, प्रकृति तथा लोगों के जानने के लिए उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करना ही होगा।

क्योंकि जनसम्पर्क में जिस भी शोध–विधि का प्रयोग किया जाए उसे तर्कसंगत तरीके से ठोक बजा लिया जाए। इसलिए इन विधियों, तकनीकों का पूर्व परीक्षण कर लेना नितान्त आवश्यक है। देखना होगा कि यह तकनीक और विधियाँ उस शोध–क्षेत्र में, वहाँ के चुने हुए वातावरण में, लोगों द्वारा स्वीकार होंगी, उन्हें वहां पर लागू किया जा सकेगा, आदि। मगर इन विषयों को अपनाने में वहाँ कठिनाई होगी तो इन विधियों, विचारधाराओं, मॉडल सिम्बलों और तकनीकों में परिवर्तन करना पड़ सकता है।

जनसम्पर्क शोध की बहुविषयी पकड़ (Inter Disciplinary Approach) परिणाम इस प्रकार तैयार किए जाएं कि जनसम्पर्क के व्यवहारकर्त्ता (प्रैक्टिशनर) नीति–निर्माता तथा प्रशासकों का ध्यान अपनी और आकर्षि कर लें।

प्रश्नावली निर्माण

शोध तथा इन्टरव्यू के लिए जो भी प्रश्नावली हम तैयार करें उसमें बेकार के प्रश्न तो कदापि न हों। प्रश्न ऐसे हों जिनमें परिणाम प्राप्त करने में लाभदायक जानकारी मिले। प्रश्नावली स्पष्ट, बोधगम्य तथा पढ़ने में सरल हो। प्रश्नावली अपने परिणाम की ओर निरन्तर बढ़ती चले। हाँ न के प्रश्न काफी उपयोगी और जानकारी प्राप्त करने में सहायक होते हैं। कुछ प्रश्न ऐसे भी किए जा सकते हैं जिनसे इन्टरव्यू देने वाले का व्यक्तित्व इसमें झलक आए। प्रश्न ऐसे तैयार किए जाएँ जिससे कि इन्टरव्यू देने वाला अपने ज्ञान तथा जानकारी के आधार पर उनका उत्तर दे सके। उलझाने वाले प्रश्न कभी न किए जाएँ।

शोधकर्त्ता सम्पर्क बनाए रखें (फॉलो अप)

प्रायः देखा गया है कि शोधकर्त्ता शोध के परिणामों की प्राप्ति के बाद उस शोध कार्य एवं क्षेत्र से सम्पर्क समाप्त कर देता है इससे बाद के परिवर्तन से हम बंचित रह जाते हैं। अच्छा यही होता है, और विशेष कर जनसम्पर्क के अनुसन्धान में कि वह जनसम्पर्क प्रैक्टिशनर तथा प्रशासकों और योजना निर्माताओं से भी सम्पर्क बनाए रखे। परिणाम के अनुसार क्रियान्वित रूप देने के लिए शोधकर्त्ता इन लोगों की बहुत बड़ी सहायता कर सकता है। शोधकर्त्ता न केवल रिसर्च के समय बल्कि बाद में इनकी सहायता करे और इनसे शोध काल में भी परामर्श करके रूपरेखा को क्रियान्वित रूप दे। उनकी आपसी परामर्श से शोध की अनेक समस्याओं का हल खोजा जा सकता है, वर्कशाप

(कार्यशालाएँ), गोष्ठियों, सम्मेलनों तथा क्षेत्रीय कार्य में दोनों का सहयोग उपयोगी रहता है। शोध परिणामों द्वारा कार्यक्रम नीतियाँ प्रभावी ढंग से बनायी और लागू की जा सकती हैं।

ज्यों ही शोध की रूपरेखा तैयार हो जाए शोध और जनसम्पर्ककर्त्ता दोनों ही परिणाम प्राप्ति तथा मूल्यांकन कार्य में लगकर एक दूसरे को सहयोग देना आरम्भ कर दें। जनता, वातावरण तथा सुविधाओं को मस्तिष्क में रखकर दोनों ही परिणाम प्राप्ति में लग जाएँ।

परिणाम

जब सब प्रकार की सूचनाएँ, पूछताछ और नतीजें मिल जाएँ तो उन्हें एक साथ रखकर अंकन (टेबुलेशन) किया जाए। अगर जनसम्पर्क विभाग स्वयं यह शोध कर रहा है तो उन्हें विभिन्न परिणामों की विभिन्न स्तरों पर क्या स्थिति रही है उसकी जानकारी मिल जाएगी। अगर जनसम्पर्क विभाग स्वयं यह शोध कर रहा है तो उन्हें विभिन्न परिणामों की विभिन्न स्तरों पर क्या स्थिति रही है उसकी जानकारी मिल जाएगी। अगर वह यह कार्य अन्य लोगों या शोध–कर्त्ताओं द्वारा करवा रहे हैं तो उनकी जानकारी देने के लिए सारांश में सभी परिणामों को अंकन करना आवश्यक है। विदेशों में तो जन–अभिमत जानने के लिए विद्युत अंकन यन्त्र (इलेक्ट्रॉनिक टेबुलेटिंग मशीन) का प्रयोग किया जाता है। उन परिणामों के आधार पर जनसम्पर्क विभाग अपनी नीतियों और कार्यक्रमों में परिवर्तन और विकास करता है। अगर विभिन्न कम्पनियों या संगठनों के जनसम्पर्क विभाग एक दूसरे को सहयोग देकर इस प्रकार के जन–अभिमत सर्वेक्षण या शोध कार्य कराएँ तो उसमें एक ही विषय या समस्या पर दोहरा धन व्यय करने की समस्या समाप्त हो जाएगी और समय की भी बचत होगी।

जनसम्पर्क विभाग इन परिणामों का विश्लेषण करके ही कार्यक्रम लागू करें। इसलिए जनसम्पर्क के लिए शोध का सर्वाधिक महत्व है क्योंकि वह इच्छित नियोजित कार्यक्रमों को ही लागू करता है। इससे विषय का दार्शनिक पक्ष सबल होता है और सैद्धान्तिक विकास होता है। जनसम्पर्ककर्त्ता के व्यवहार में भी निपुणता आती है।

जनसंचार शोध-ऐतिहासिक संदर्भ

ज्ञान व्यवस्था के विकास का अनुसंधान की प्रक्रिया से घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि अनुसंधान 'अज्ञात को ज्ञात', 'ज्ञात को वास्तविक ज्ञात' एवं 'अतीत–वर्तमान एवं भावी सम्भावनाओं के ज्ञान' को कार्य–कारण के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का व्यवस्थित प्रयास है। समाज विज्ञान के विद्यार्थी के रूप में हमें इस तर्क को समझने की आवश्यकता है कि 'विज्ञान–प्रौद्योगिकी–समाज' के पारस्परिक एवं सार्थक हस्तक्षेप प्रत्येक सजग नागरिक को अनुसंधान के निकट लाते हैं। मीडिया अनुसंधान भी इस

VPM CLASSES

सार्थक हस्तक्षेप से उत्पन्न हुई एक आलोचनात्मक विधा है। प्रत्येक सामाजिक अनुसंधान की भांति मीडिया अनुसंधान मानव जीवन की गुणवत्ता (Quality of Human Life) के उन्नयन में सहायक है, क्योंकि यह सामाजिक उत्तरदायित्वों से परिचित कराता है और सामाजिक विकास के उपयुक्त मार्ग के विकल्पों के प्रति सजग बनाता है। मीडिया अनुसंधानकर्त्ता एवं वैज्ञानिक के सामाजिक दायित्व इस दृष्टि से समान है और नीति शास्त्र के उन मुद्दों को उत्पन्न करने हैं जिन्हें विज्ञान, वैज्ञानिकक पद्धति एवं अनुसंधान के मूल्यांकन हेतु प्रयुक्त किया जाता है। नीति शास्त्र (Ethics) का यह सवाल मुख्यतः द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त उभर कर आया जब युद्धोन्माद, प्रौद्योगिकीय एकाधिकार, नाभिकीय हथियारों के प्रयोग एवं दमन की राजनीति ने विचारधाराओं, विश्व शांति, लोकतान्त्रिक राजनीतिक शैली एवं समानता के मूल्यों को चुनौती दी। वस्तुत+ 'ज्ञान क्यों' एवं ज्ञान किसके लिए' के सवाल ही 'इथिक्स' की अवधारणा को निर्मित करते हैं और सभ्यताओं के मानवीय मूल्य केन्द्रित पक्षों का पर्याय बन जाते हैं। हमें इस तथ्य से अवगत होना आवश्यक है कि किसी भी अनुसंधान प्रयास में विज्ञान एक उपकरण (Instrument), एक पद्धति (Method), ज्ञान की संचयी परम्परा (Cumulative Tradition of Knowledge), सृजित किये गये विचार एवं उत्पाद को विकसित करने के कारक (Factor in Developing Production) एवं मनुष्य के विश्वास एवं दृष्टिकोण में बदाव के उपकरण (Instrument which moulds attitude and beliefs of man) के रूप में प्रयुक्त होता है। मीडिया अनुसंधान में भी विज्ञान की उपस्थिति इन पांच सन्दर्भों के अन्तर्गत है। अनुसंधान की इस प्रक्रिया में भावनात्मक तटस्थता एवं भावनाओं का सावधानीपूर्वक सम्मिलन मीडिया के सन्दर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योकि यह पक्ष विज्ञान के पांचों विषयों को विशिष्ट अर्थों की तरफ ले जाता है। मीडिया अनुसंधान के पक्षों की चर्चा करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि समकालीन समाजों में मीडिया सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिकता के स्वरूपों को प्रभावित करता है तथा इन संरचनाओं के स्वरूपों से प्रभावित होता है। 1980 एवं 1990 के दशकों में मीडिया से सम्बन्धित आधारभूत संरचना का अप्रत्याशित विस्तार एवं सेटेलाइट टेलीविजन के 'ट्रान्सनेशनल' चरित्र ने भारतीय समाज में मीडिया की उपस्थिति प्रभावी कर दी है। अतः इनसे सम्बद्ध अनुसंधानों में नैतिकता व नीतिशास्त्र के सवाल आज सांस्कृतिक व अकादमिक प्रकृति के सवाल बन गये हैं। मीडिया अनुसंधान के लिए मनोरंजन, विज्ञापन, शिक्षा एवं राजनीतिक क्षेत्र वे चार महत्त्वपूर्ण विषय हैं, जिनके विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत करना ही मीडिया को जानना है। इस प्रस्तुति में विजुअल्स, भाषा, क्रम, समय

VPM CLASSES

एवं प्रतीकों का प्रयोग सूचना में 'अर्थ' देता है और अनुसंधानकर्त्ता को नीति शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों के सम्मुख ले आता है।

नीतिशास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों पर चर्चा के पूर्व मीडिया अनुसंधान के अवयवों की संक्षिप्त चर्चा यहां प्रासंगिक होगी। मीडिया वर्तमान समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के द्वितीयक वाहकों में (Secondary Carriers) से एक है और सक्रियता में अनेक गुना वृद्धि करने में सक्षम है अर्थात् यह 'मोबिलिटी मल्टिप्लायर' (Mobility Multiplier) है। यह परिवार एवं राष्ट्र क प्रकृति को परिवर्तित करता है, क्योंकि मूल्य प्रणालियों में बदलाव तथा जनमत निर्माण की सम्भावनाएं मीडिया की भूमिका के परिणाम हो सकते हैं। इस स्थिति के कारण मीडिया की दुनिया से समाज शास्त्री उदासीन नहीं हो सकते हैं। मीडिया जीवन की समस्याओं पर विचार करता है, अतः मीडिया अनुसंधान किसी भी दृष्टि से 'मूल्य निरपेक्ष' नहीं हो सकता। प्रत्यक्षवादी वैज्ञानिक यद्यपि 'मूल्य तटस्थता' के समर्थक हैं, परन्तु समस्याओं पर विचार करते हुए यदि विकल्प प्रस्तुत करने का लक्ष्य अनुसंधानकत्त्र का है तो उसे 'मूल्य तटस्थता' अथवा 'मूल्य निरपेक्षता' का मिथक तोड़ना पड़ सकता है। मीडिया अनुसंधानकर्त्ता को सन्तुलन, विभिन्न पक्षों को बिना भेदभाव के प्रस्तुतीकरण एवं पक्षपात का निषेध जैसे अवयवों को निःसंकोच महत्त्व देना होता है, ताकि सन्देश, सन्देशवाहक, सन्देश ग्रहणकर्त्ता, प्रभाव व साधन (Message, Sender, Receiver, Effects and Mode) की प्रकृति समझी जा सकेगी।

संचार को मीडिया अनुसंधानकर्त्ता मनुष्य के मध्य अर्थ (Meaning) के विनिमय के रूप में स्वीकारता है। अतः इरादा (Intention) उपलब्ध भाषा, उपलब्ध एवं प्रयुक्त प्रतीक, सन्दर्भ (Contexts) विनिमय में सहभागी समूहों की प्रकृति इत्यादि का सारगर्भित एवं वस्तुपरक विवेचन मीडिया अनुसंधान की अनिवार्यता है। यदि मीडिया अनुसंधानकर्त्ता संचारकर्मी भी है तो अनुसंधान प्रक्रिया जटिल हो सकती है, क्योंकि मीडिया पर किसका प्रभावी स्वामित्व है? मीडियाकर्मी की क्या विचारधारा है? मीडिया उद्योग के स्थानीय, प्रान्तीय, राष्ट्रीय एवं बहुराष्ट्रीय घरानों एवं निगमों पर बाह्य एव आन्तरिक प्रभाव एवं दबाव के क्या स्वरूप है? इत्यादि पक्ष समूचे अनुसंधान को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में निर्देशित करते हैं। यहां इस पक्ष को भी जानना आवश्यक है कि यदि अनुसंधान दूरगामी प्रभाव उत्पन्न करने की सम्भवना रखता है तो विभिन्न प्रकार के दबावों की सक्रियता का रूप नितान्त भिन्न हो सकता है। राजनीतिक एवं आर्थिक संगठन मीडिया एवं आर्थिक संगठन का अस्तित्व विद्यमान होता है। ये संगठन समाज में उभरने वाले संघर्षों एवं प्रतिद्वन्द्विताओं को मीडिया में एक विशिष्ट प्रकृति का स्थान दिलवाते हैं जिसका प्रस्तुतीकरण विशेष प्रकृति के पाठकों एवं श्रोताओं को विशेष सन्दर्भ में प्रभावित

करता है। इन्टरनेट ने इस प्रभाव को वैश्विक सन्दर्भ प्रदान किये हैं। 'ज्ञान–सूचना–बौद्धिकता' का यह फैलता जाल मीडिया अनुसंधानकर्त्ता को जानना आवश्यक है। मुझे महसूस होता है कि क्या पक्ष मीडिया अनुसंधानकर्त्ता की जिज्ञासा का द्योतक है। सम्भवतया इस कारण हम एक स्तर पर मीडिया अनुसंधान में सास्कृतिक अध्ययनों को एक परिप्रेक्ष्य मान सकते हैं। इस तर्क को यदि विस्तार दें तो मीडिया अनुसंधान में नीतिशास्त्र का प्रश्न भी एक प्रश्न को और व्यापकता दे दी है, क्योंकि अब संचार में संलग्न जनता (Public) का स्थान (Place) कौन सा है, का निर्धारण करना कठिन हो गया है।

मीडिया अनुसंधान के उक्त चरित्र को ज्ञान कर ही हम अनुसंधान के विषयों का चुनाव कर सकते हैं। अनुसंधान के विषय का चुनाव भी नैतिकता (Morality) एवं नीतिशास्त्र (Ethics) से सम्बद्ध है। क्या नैतिक है? का प्रश्न अनुसंधान के सन्दर्भ में उपयुक्त एवं अनुपयुक्तता से सम्बद्ध है। हमारी दृष्टि में नैतिकता का अनुसंधान में प्रश्न 'मूल्य प्रासांगिकता' (Value Relevance) से प्रारमी होता है और पूर्वाग्रहों के पृथक्करण (Separation of prejudices) के प्रयासों पर केन्द्रित हो जाता है। नीतिशास्त्र (Ethics) का जबकि अनुसंधान में अभिप्राय सत्यता की सत्यपरक खोज एवं सत्यपरक जांच से है। प्रदत्तों (Data) को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत न करना, भ्रामक पक्षों को प्रदत्तों का रूप न देना, किये जा चुके अध्ययन को स्वयं की मौलिकता के दायरे में प्रस्तुति न करना जैसे अनेक पक्ष हैं जो मीडिया अनुसंधान में ही नहीं अपितु लगभग सभी अनुसंधानों के लिए आचारशास्त्र को निर्मित करते हैं। 'यह तो उनका जन्म जात चरित्र है' जैसा मत वह निराधार आक्षेप है, जिसे अनुसंधान में सम्मिलित करना 'नैतिकता' का निषेध है जबकि 'पुलिस द्वारा नकली मुठभेड में मार गिराये निरापराधियों को अपराधी बता कर पुलिस कुशलता के आंकड़ों में वृद्धि करना' अनुसंधानके आचार शास्त्र का निषेध है। मीडिया अनुसंधान को इन स्थितियों से पृथक् करना अनुसंधानकर्त्ता का वैज्ञानिक दायित्व है। एक स्तर तक मैं इस तर्क को महत्व देना चाहूंगा कि नैतिकता एवं नीतिशास्त्र का अनुसंधान में अभिप्राय वस्तुपरकता (Objectivity) अथवा मूल्य (Value neutrality) तटस्थता से नहीं है। मुझे यह विश्लेषण करने में कोई संकोच नहीं है कि नैतिकता एवं नीतिशास्त्र को वस्तुपरकता के रूप में स्थापित करना समूचे विवाद एवं चिन्तन को 'डीकल्चर्ड' करना है, जो विज्ञान के लिए वर्तमान सन्दर्भ में सबसे बड़ा खतरा है। मीडिया अनुसंधान सहित समस्त सामाजिक अनुसंधान विचारधारा के परे नहीं जा सकते, अतः वस्तुपरकता की उपस्थिति पर बल 'वैज्ञानिक मिथक' है जो 'शक्तिशाली' का प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थक बन जाता है।

मीडिया अनुसंधान के सामाजिक दायित्व हैं और वे दायित्व ही 'नैतिकता' एवं नीतिशास्त्र की कार्यकारी परिभाषा को निर्मित करते हैं। उदाहरण के लिए यदि समकालीनता को ध्यान में रखकर 'युद्ध एवं मीडिया', 'साम्प्रदायिकता एवं मीडिया', 'फासीवाद, मीडिया एवं लोकतन्त्र', 'मीडिया, बाजारवाद एवं साम्राज्यवाद' तथा 'मीडिया एवं मानवाधिकार' जैसे विषयों पर मीडिया अनुसंधान केन्द्रित हों तब नैतिकता एवं आचारशास्त्र/नीतिशास्त्र की व्याख्याएं अनुसंधान की सीमाओं के परे जाकर सामाजिक सरोकारों से सम्बद्ध हो जाती है। मीडिया में मत (Opinion) एवं विचारधाराओं के सवाल, समाचार–पत्रों के मुख पृष्ठ अथवा अन्य पृष्ठ एवं उन पर छपने वाले समाचारों की रचना को जाने बिना मीडिया से सम्बद्ध अनुसंधान सामाजिक एवं 'आलोचनात्मक–वैज्ञानिक' दृष्टि से एक पक्षीय हो जाता है।

मीडिया अनुसंधान अन्तरअनुशासनात्मक (Interdisciplinary) क्षेत्र है। मीडिया की प्रत्येक विधा में प्रत्येक 'प्राडक्ट' (समाचार, विज्ञापन, कहानी, सम्पादकीय, सम्पादकीय पृष्ठ पर लेख, पाठकों के पत्र, शब्द–रचना, टी.वी. समचार, प्रायोजित कार्यक्रम, रंग चयन, मॉडल्स की प्रस्तुति, पुस्तक का कवर एवं पुस्तक–विषय, लेखक, प्रस्तुतकर्त्ता, पाठक, दर्शक आदि के चरित्र इत्यादि) अनुसंधानकर्त्ता के सम्मुख किसी 'सांस्कृतिक राजनीतिक' एवं 'आर्थिक विचारधारयी' स्थिति के पक्ष में या विरोध में या विरोध में या नवीन विकल्पों की तलाश में उत्पन्न किये गये 'पक्ष' हैं, जिनका 'बाजार' में कोई मूल्य है। ऐसे 'प्रोडक्ट्स' का व्यवस्थित अध्ययन 'तटस्थ' कैसे हो सकता है। मुझे लगता है कि 'तटस्थ' रहने अथवा 'तटस्थ' सिद्ध करने का प्रयास भी एक विचारधारायी दृष्टिकोण है, ताकि 'शासकीय व्यवस्था' से सम्बन्धों को अथवा पाठकों के साथ सम्बन्धों को एक मनचाही दिशा की तरफ मोड़ा जा सके। वर्तमान विश्व में जहां 'हम समूहों' एवं 'वे समूहों' के रूप में जनसंख्या का सामाजिक विभाजन कर दिया गया है, सामाजिक महत्त्व के मीडिया अनुसंधान किस नीतिशास्त्र को सम्मिलित करें का प्रश्न अपने आप विचारधारायी स्वरूप प्राप्त कर लेता है। अध्ययन की जाने वाली घटना में किसने क्या किया, कब किया, कहां, एवं क्यों किया के प्रश्नों की विस्तृत एवं गहन सूचना को प्राप्त करना मीडिया अनुसंधान के नीतिशास्त्र को निर्मित करने को प्रथम स्वाभाविक चरण है। मीडिया में जो कुछ कहा जाता है। अथवा दिखाया जाता है वह सपाट बयानी (Straight forward) दृष्टि नहीं है, अतः उनके बहुस्तरीय अर्थों को तात्कालिक दायरों एवं दूरगामी दायरों में जानने का व्यवस्थित प्रयास नीतिशास्त्र का दूसरा चरण है। अध्ययन की जाने वाली घटना के 'एनकोडिंग डीकोडिंग' स्वरूप की जांच एवं मीडिया क्षेत्र से बाहर के क्षेत्र पर (अर्थात् सन्देश देने वाला–सन्देश की प्रकृति एवं सन्देश को प्राप्त करने वाला

जैसे मीडिया क्षेत्र के परे) पर इसके प्रभाव का वैचारिक व क्रियाओं सम्बन्धी दायरों में समझने की कोशिश मीडिया अनुसंधान के नीतिशास्त्र का तृतीय चरण है।

प्रघटना के प्रति सन्देह एवं प्रघटना के प्रति विश्वास जैसे पक्षों की पाठक के दृष्टिकोण के सन्दर्भ में जांच इस नीति शास्त्र का चौथा चरण हो सकता है जबकि नीतिशास्त्र का पांचवा एवं अन्तिव चरण अनुसंधानकर्त्ता की उस ईमानदार चेतना से सम्बद्ध है जहां वास्तविकता को मिथकीय व मिथकों को वास्तविकता का रूप देकर प्रस्तुत न करने की प्रतिबद्धता हो। प्रौद्योगिकीय विकास ने मिथक एवं वास्तविकता के मध्य के स्पष्ट विभेद को कम करने के उपकरण देकर अनुसंधानों को एक खतरनाक हथियार के रूप में प्रयुक्त हो सकने की सम्भावनाएं उत्पन्न कर दी है। अतः साहित्यिक प्रमाण, ऐतिहासिक प्रमाण एवं अन्य प्रमाणों की वैज्ञानिकता तथा क्षेत्रीय शोध कार्य के समन्वय को मीडिया अनुसंधान मे व्यवस्थित एवं आलोचनात्मक रूप देना नीतिशास्त्र का वह सार तत्त्व है, जिससे समूचा अनुसंधान दूरगामी प्रभाव वाला बन जाता है। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि अनुसंधानकर्त्ता के रूप में हम निजी लक्ष्य, प्रथागत व्यवहारों एवं अपने निकट के सामाजिक परिवेश के ऐसे कैदी न हो जायें कि समूचा अनुसंधान गैर–वैज्ञानिक सथापनाओं का शिकार बन जाय। इस परिवेश का कैदी बन जाना एवं मूल्य निरपेक्ष समाज विज्ञानों का अन्य समर्थक बन जाना व दो पक्ष हैं जिनसे अनुसंधानकर्त्ता को यथासम्भव बचना चाहिए। संचार क्रांति ने यह सिद्ध कर दिया है कि 'उपयुक्त प्रेषण' मनुष्य का मूलभूत अधिकार बनना चाहिए जो 'सूचना का अधिकार' का अर्थपरक विस्तार है। यदि मीडिया अनुसंधान इस पक्ष के अनुकूल स्वयं को स्थापित नहीं करता है तो यह नीतिशास्त्र की ऐसी उपेक्षा होगी जो ज्ञान की सामाजिक भूमिका को विवादास्पद बना सकती है। निर्धनता, साम्प्रदायिकता, बेकारी, अशिक्षा, संकीर्णतावाद विकासशील देशों में पनप रही ऐसी समस्याएं हैं जिनके कारणों में सूचनाओं की प्राप्ति न होना एवं उपयुक्त प्रेषण न होना भी सम्मिलित है। मीडिया अनुसंधान की नैतिकता एवं सामाजिक भूमिकाओं का इन मुद्दों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मीडिया अनुसंधान के नीतिशास्त्र में इस कारण 'अतीत की आलोचनात्मक समझ' की प्रस्तुति की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रूप ग्रहण कर लेती है।

हमारे द्वारा प्रस्तुत किया गया विश्लेषण एक मत स्थापित करता है कि संचार माध्यमों का वर्ग चरित्र स्पष्ट है। पहले से प्रचलित विचारों को जन संचार माध्यम निरन्तरता देने की कोशिश करते हैं, ताकि शासक वर्ग के हितों की पूर्ति हो सके दूसरी तरफ विभिन्न मुद्दों को दिखाकर या समाचार अंग बनाकर जनमत निर्माण का प्रयास कर जन संचार माधयम सामाजिक परिवर्तन का एक कारक बन

जाते हैं। अतः संचार से सम्बन्धित अध्ययन विकसित होती हुई वैज्ञानिक सभ्यता का महत्वपूर्ण अंग है। थियेटर से लेकर इन्टरनेट तक का जाल लोक संचार से प्रौद्योगिक निद्रेशित जन संचार की यात्रा का 'वर्तमान समग्र' है, जिसमें 'प्रौद्योगिकीय प्रगति' एवं 'सामाजिक जीवन विश्व' का सम्मिलन है। ज्ञान एवं संस्कृति के वैज्ञानिकीकरण ने मीडिया अनुसंधान के सम्मुख नीतिशास्त्रीय सवालों को नवीन रूप दिये हैं। मीडिया से सबंद्ध ज्ञान की खोज तक मीडिया अनुसंधान सीमित नहीं है। उस खोजे गये ज्ञान का क्रियान्वयन की आवश्यक है, ताकि मीडिया अनुसंधान मीडिया नीति के स्वरूप को सुनिश्चित कर सके। अनुसंधान मीडिया नीति के स्वरूप को सुनिश्चित कर सके। अनुसंधान से अर्जिन ज्ञान की आम जनता को जनाकारी भी हमारी दृष्टि में एक 'इथीकल' सवाल है। अनुसंधान को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने वाली संस्थागत संरचनायें कौन–सी हैं और उस अनुसंधान के निष्कर्षों का क्या चरित्र है के मध्य संबंधों को जानना (विशेषतः मीडिया, शिक्षा, स्वास्थ्य, एवं रक्षा अनुसंधान में) अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि ये ही सम्बन्ध नीतिशास्त्रीय प्रश्नों को और इस प्रश्नों से संबद्ध उत्तरों को निर्मित करते है।

वैज्ञानिक अनुसंधान जब आणविक हथियरों को उत्पन्न कर मानवीय अस्तित्व को प्रभावित करता है तब नीतिशास्त्रीय एवं नैतिक सवाल उत्पन्न होते हैं। नीतिशास्त्रीय एवं नैतिक सवालों का हमारी दृष्टि से राजनीति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मीडिया अनुसंधानकर्त्ता को इन जटिल स्थितियों में स्वयं की आचार संहिता को निर्मित करना वं उसे मूर्त रूप देना आवश्यक है। यह आचार संहिता पद्धति शास्त्रीय संगतता एवं सामाजिक सरोकारों को ध्यान में रख कर बनानी चाहिए। 'पारिवारिक–अनौपचारिक' परिवेश एवं 'गैर–परिवारिक–औपचारिक' परिवेश के मध्य हुए ध्रुवीकरण की पकड़ मीडिया अनुसंधानकर्त्ता के लिए आवश्यक है। संघर्ष एवं एकमत्यता के मध्य उभरने वाली टकराहट एवं उभर रहे विकल्पों की खोज आवश्यक है। ये प्रयास मीडिया अनुसंधान को अत्यन्त प्रभावी बना देते हैं। 'तार्किक पुनर्रचना' के प्रयास आनुभविक तर्कों पर पूर्ण रूपेण आधारित हों की एक सीमा तक कोशिश की जा सकती है। अनुसंधानकर्त्ता का यह प्रयास उसे एक तरफ निष्पक्ष और दूसरी तरफ प्रतिबद्ध बनाता है। इन दोनों विपरीत स्थितियों के मध्य उपयुक्त समझौता ही मीडिया अनुसंधान का नीतिशास्त्रीय पक्ष है। मीडिया अनुसंधान में वार्तालापीय विश्लेषण एवं सहभागी अवलोकन की प्रविबद्ध बनाता है। इन दोनों विपरीत स्थितियों के मध्य उपयुक्त समझौता ही मीडिया अनुसंधान का नीतिशास्त्रीय पक्ष है। मीडिया अनुसंधान में वार्तालापीय विश्लेषण एवं सहभागी अवलोकन की प्रविधियों का मिश्रण होता है, अतः उसे 'भावनात्मक आक्रामकता' से बचना अत्यन्त

आवश्यक आवश्यक है, अन्यथा समूचा अनुसंधान दिशाहीन हो जाता है। तथ्यों को जानबूझ कर छिपाना एवं तथ्यों को 'उत्पादित' करना इस भावनात्मक आक्रामकता की नीतिशास्त्रीय दृष्टि से नकारात्मक एवं विज्ञान विरोधी परिणाम है। नि प्रदत्तों को अनुसंधानकर्त्ता ने संकलित किया है, उनसे सम्बद्ध स्त्रोतों की गोपनीयता को भी बनाये रखना आचार शास्त्र का महत्वपूर्ण भाग है, जिसे सामान्यतया 'भावनात्मक आक्रामकता' का शिकार बनना पड़ता है। 'खोजपरक पत्रकारिता' ने मीडिया अनुसंधान के क्षेत्र में इन सवालों को और अधिक संवेदनशील बना दिया है। ज्ञान, शक्ति एवं मीडिया अनुसंधान के अन्तः सम्बद्ध में क्षेत्रों में उत्पन्न हुए 'इथिक्स' संबंधी सवालों का उत्तर स्वयं अनुसंधानकर्त्ता को ही खोजना होगा।

इस आलेख में आचार शास्त्र के अर्थ एवं उससे संबंधित सवालों का राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक मूल्य एवं पद्धतिशास्त्रीय दृष्टियों से प्रस्तुत करने का प्रयास किये गए हैं। मेरा मानना है कि उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण, एक ध्रुवीय विश्व के मिथक से पनपे साम्राज्यवाद एवं असमान विकास की विसंगतियों ने मीडिया अनुसंधान को अत्यन्त महत्वपूर्ण बना दिया है। भारतीय परिवेश में धर्मनिरपेक्षता, संसदीय राजनीति, आर्थिक सम्प्रभुता एवं संघवाद के प्रमुख खतरे उभरे हैं। ऐसे में मीडिया अनुसंधान राष्ट्र–राज्य की उपलब्धियों, विफलताओं, चुनौतियों एवं सम्भावनाओं का व्यवस्थित मूल्यांकन कर सकता है। सामाजिक व्याधियां आज 'दृश्य अस्तित्व' का भाग मीडिया द्वारा ही बनती हैं। मीडिया की भूमिका पर सार्वजनिक बहस होती है और आरोपीकरण (Stigmatization) की प्रक्रिया 'मीडिया' के समूचे चरित्र को विवाद का विषय बना देती है। अतः मीडिया अनुसंधान का महत्व आज निर्विवाद रूप से स्थापित हुआ है। आवश्यकता इस बात की है कि मीडिया अनुसंधानकर्त्ता अपने अध्ययन में उन नीतिशास्त्रीय पक्षों के प्रति प्रतिबद्ध रहे जो उस अनुसंधान प्रक्रिया को सामाजिक सरोकारों एवं जनहित दृष्टि से सम्बद्ध करते हैं। मीडिया अनुसंधान का उद्देश्य प्रचार नहीं है, अपितु 'मीडिया' को 'विचार' का रूप देना है ताकि 'विचार' का प्रयोग कर अपने जमाने की घटनाओं का समझा जा सके और समाज को बदलने के संकेत आम नागरिकों में प्रेषित किये जा सकें ताकि विवेक, तर्क, धैर्य एवं आशा के हथियारों से आम नागरिक पृथक् न हो।

प्रशासनिक एवं समीक्षात्मक परम्पराएँ

जब हम जनसंचार के बारे में शोध करते हैं तो यह पत्रकारिता कार्य से अलग हटकर एक विशुद्ध कार्य है, यद्यपि इन दोनों क्रियाकलापों में महत्वपूर्ण संबंध है। "हम यह समझने की कोशिश करते हैं

कि वास्तव में मीडिया कैसे कार्य करती हैं इसका स्वयं का क्या प्रभाव है तथा यह व्यवस्था को परिवर्तित करने की कितनी क्षमता रखता है।

सन् 1970 में यूनेक्को के एक प्रकाशन में कहा गया है कि सूचनाओं की उपलब्धता पर ही एक बुद्धिमत्तापूर्ण संचार नीति निर्भर है जो कि सिर्फ शोध के द्वारा ही संभव है। यही नीति हमें अत्यधिक शोध करने एवं संचार नीति के विकास के लिए उत्प्रेरित करती है। हाल के वर्षों में हमने जनसंचार शोध के विकास की दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल किए हैं। जनसंचार शोध का क्षेत्र पश्चिमी औद्योगिक देशों में फैलते हुए अब अंतराष्ट्रीय स्तर पर तेजी से विकसित होता जा रहा है।

अमेरिका में जनसंचार शोध का विकास समाज विज्ञानों की अन्य शाखाओं के साथ–साथ ही विकसित हुआ। यह आवश्यकता अनुसार आधुनिक, औद्योगिक और ग्रामीण समाज में मात्रात्मक एवं गुणात्मक सूचना हेतु उत्तरदायी है जबकि भारतीय अथवा एशियाई समाज में दोनों विधाओं के विकास में असमानता और असामंजस्य की स्थिति बहुत दिनों तक कायम रही है। आत हम अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार शोध और मीडिया विकास हेतु प्रत्नशील है। और संतोषजनक सफलता भी प्राप्त किए हैं। जनसंचार शोध और विकास के संबंध में प्रगति हमारे समाज की समस्याओं के निदान पर निर्भर हैं। जैसे–जैसे हमारी सामाजिक समस्याएं घटती जाएंगी हम उस दिशा में वांछित सफलता प्राप्त करते जायेंगे। समाज विज्ञान, समाज कार्य और मनोविज्ञान का जनसंचार शोध से गहरा संबंध है और इसीलिए शोध में समाज विज्ञानों की भूमिका सामाजिक समस्याओं के निवारण के लिए अत्यंत आवश्यक है।

आलोचनात्मक (सूक्ष्म, विवेचनात्मक) एवं सामाजिक शोध

प्रारंभिक चरण में हम सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही आलोचनात्मक, समस्यात्मक एवं नीतिमूलक शोध की विवेचना करते हैं। व्यापक रूप से आलोचनात्मक शोध यद्यपि एक विस्तारवादी और प्रतिक्रियात्मक भिन्न मूल्यों की ही एक कड़ी है। फिर भी यह लोक सम्मति या जनमत शोध से कम महत्वपूग्र है तथा ऐतिहासिक और संस्थागत संबंधों द्वारा पत्रकारिता एवं प्रसार के संदर्भ में प्रतिबंधित की गई है। इसके अतिरिक्त यह बाजार, श्रोता समूह और जनसमूह से गहराई तक संबंधित नहीं है तथा सेवा, प्रशासन और वाणिज्यिक गतिविधियों से कम जुड़ी है।

जैसे–जैसे मीडिया संस्थाएं प्रभावशाली होती जाती हैं अथवा महत्वपूर्ण होती जाती है, आलोचनात्मक नीतियों और समस्यामूलक दबाव बाहरी क्षेत्रों से पड़ने लगता है। हालांकि विवेचनात्मक शोध इन समस्याओं की पूर्णतः उपेक्षा नहीं करता है फिर यह समस्याओं को उस रूप में नहीं लेता जैसा कि

मीडिया के लोग अथवा राजनीतिज्ञ लेते हैं। पश्चिमी जगत में अनुशासन और संगठित शोध का एक अर्थपूर्ण व्यवसाय व पेशे के रूप में लिया जाता है। संचार का सामाजिक प्रक्रियाओं के साथ अध्ययन तथा मीडिया संस्थाओं के साथ अन्य सामाजिक संस्थाओं के अध्ययन को बल प्रदान किया जाता है। शोध को सामाजिक संरचना, संगठन, व्यवसाय, सामाजीकरण, सहभागिता आदि के साथ–साथ अध्ययन किया जाता है। इसलिए संचार प्रक्रिया एवं संचार प्रारूप का अध्ययन विशेष जरूरी है। अतः संचार नीतियों का समाज के अन्य शैक्षिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक, नीतियों के साथ ही अध्ययन और तद्नुसार आवश्यक परिवर्तन संचार शोध का मूल सिद्धांत है।

जन संचार शोध की समस्याएं

शुरू–शुरू में यह विचार किया गया कि जनसंचार शोध के क्षेत्र में व्यापक और वास्तविक सिद्धांतों की स्थापना की महती आवश्यकता है। वास्तव में, जनसंचार शोध का इतिहास सिद्धांत के प्रश्न पर हमेशा से विवादित रहा है। इसके अतिरिक्त इस प्रश्न पर जितने भी अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों (सेमिनार) हुई हैं, उनमें सिद्धांत के स्तर पर निर्धारण करने में मतैक्यता का अभाव रहा है। इस संबंध में दो सुझावों की चर्चा करना महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। पहला सुझाव समाज के व्यापक परिप्रेक्ष्य में मान्य हो। दूसरा सुझाव यह है कि समाज के विभिन्न वर्गों के सदंर्भ में अथवा मध्यम वर्ग को ध्यान में रखते हुए किसी ऐसे सिद्धांत का विकास किया जाए तो किसी सर्वव्यापी और सर्वमान्य सिद्धांत की स्थापना करने में सहायक सिद्ध हो सके।

इस संबंध में आने वाली कठिनाइयों के समाधान के लिए साधारणतया यह विचार बना कि हमें सिद्धांत और अनुभव सिद्ध अथवा प्रयोग ज्ञान सिद्ध शोध के बीच संबंधों पर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए फिर भी संचार और समाज सिद्धांत के बीच सूचना संबंधों की अनुपस्थिति में हमारे शोध की सफलता हमेशा संदिग्ध बनी रहेगी। इसका तात्पर्य यही नहीं है कि लोक सम्मत कार्यों का कोई सैद्धांतिक आधार नहीं है अपितु यह एक मूल्यात्मक स्थिति का आधार प्रदान करता है। किसी समाज के आधारभूत सिद्धांत के बिना कोई भी शोध कार्यक्रम मीडिया और समाज के संबंधों की उचित व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर सकता। यही कारण है कि मीडिया सिद्धांत की प्रतिस्थापना हेतु समाज के अनुभव सिद्ध या प्रयोग ज्ञान सिद्ध बातों का स्वागत किया जाना चाहिए।

समाज का एक निश्चित सिद्धांत (नियम–कानून आचार–मूल्य) होना आवश्यक है और प्रायः हम सभी इस बात से सहमत हैं। लेकिन किस प्रकार का सिद्धान्त? यह प्रश्न अनुत्तरित है। कैरी का सुझाव है कि एक ऐसे संचार सिद्धांत या शोध की आवश्यकता है जिसमें विकास समाज के सिद्धांत द्वारा किया

गया हो। इस तरह से एक शक्तिशाली और आधारभूत कार्य इस क्षेत्र में और समाज विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में किया जा सकता है और इससे हमारी संचार आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है।

जनंसचार शोध एवं समाज की समालोचना (ऐतिहासिक पृष्ठभूमि)

पश्चिमी समाज में आलोचक अपनी आलोचनाओं को वर्तमान औद्योगिक परिप्रेक्ष्य में देखना चाहते हैं लेकिन जहां तक भारतीय समाज का प्रश्न है हम अपनी संस्कृति और सामाजिक परंपराओं से बंधे हुए हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम विज्ञान और नयी तकनीक के विरोधी हैं अपितु हम विशुद्ध विज्ञानवादी न होकर मानववादी और सार्थक विज्ञानवादी हैं।

अमेरिका और यूरोप मं औद्योगिक क्रांति के बाद संगठित रूप से एक इकाई के रूप में काम करने की आवश्यकता की समझ बढ़ी तथा समाज में समुदायों की धारणा बननी शुरू हुई, और इसी के साथ–साथ कुशलता और योग्यता के आधार पर व्यक्तिवादी भावना का भी विकास हुआ। इसी औद्योगिक पृष्ठभूमि में पश्चिम के समाज वैज्ञानिक, सामाजिक संगठन और सामाजिक विघटन की अवधारणा को पुष्ट करने की कोशिश करते देखे गए तथा सामाजिक सूचनाओं का विकास आधुनिकता के संदर्भ होने लगा। यही सूचनाएं सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करने लगीं जिससे जनमत का निर्माण हुआ। लेकिन जैसे का पश्चिमी समाज का सामाजिक एव सांस्कृतिक पर्यावरण था उससे प्रचार और विज्ञापन को ही प्रमुखता प्राप्त हुई। इन्हीं परिस्थितियों में संचार और समाज की दिशा पर कार्य हुआ और शहरी विकास के साथ–साथ समाज की स्थापना को भी बल मिला। जिससे सामाजिक व्यवहार और सामाजिक नियंत्रण की दिशा में सूचना और संचार की उपयोगिता बढ़ती चली गयी।

वूल्मर ने सामूहिक व्यवहार तथा सामाजिक निदान पर विशेष कार्य किया और सामाजिक आंदोलनों में संचार की भूमिका निर्णायक होती गई। वूल्मर ने जनता, भीड़ और समूह (समाज) की व्याख्या की तथा उनके जनमत और प्रचार का दर्शन व उनका विज्ञापन, जो सामाजिक क्रियाकलापों से संबंधित था समाज के लोगों को संबोधित एवं मार्गदर्शन करने का एक माध्यम बना।

1940 में हैराल्ड लासवेल ने राजनीतिक शक्ति और प्रचार पर कार्य के संदर्भ में जनसंचार शोध के महत्व को प्रतिपादित किया। इसके बाद सामाजिक परिदृश्यों के विश्लेषण के लिए संचार की महत्ता बढ़ती गयी। इन्होंने जनसंचार को एक नयी सामाजिक शक्ति की संज्ञा दी। जससंचार को एक निश्चित दिशा प्रदान करने में 'शिकागो स्कूल' का भी विशेष योगदान रहा है। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक कारणों और आवश्यकताओं के संदर्भ में संचार और

मीडिया अपना स्वरूप ग्रहण कर रही थी। धीरे–धीरे जनसंचार की प्रक्रिया व प्रभाव सामाजिक संरचना और आवश्यक सामाजिक पर्यावरण की प्रतीक बनती गयी जो आगे चलकर अध्ययन और वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए अध्ययन का आधार बनी। परिणामस्वरूप मीडिया और जनसंचार एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में उभर कर सामने आया।

समाजशास्त्र एवं राजनीतिक विज्ञान में संचार और मीडिया शोध पर स्वतंत्र रूप से काम हुआ है। आगे चलकर मीडिया और संचार क्षेत्र में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए अमेरिकी कालेजों में पत्रकारिता और जनसंचार विभागों की स्थापना स्वतंत्र रूप से की गयी तथा इसके वैज्ञानिक अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था भी की गयी। परिणामस्वरूप धीरे–धीरे विश्वविद्यालयों में जब जनसंचार शोध संस्थासन पर विशेष बल दिया। इसके बाद क्रमिक ढंग से शोध पत्रिकाएं, वैज्ञानिक संगठन, किताबें, लाइब्रेरी आदि की व्यवस्थाएं होनी प्रारंभ हो गयीं।

मानव व्यवहार और प्रकृति से सदंर्भ में यद्यपि संचार पर सामाजिक सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन का विचार अपनी जगह पर ही था, फिर भी जहाँ पर तरफ लासवेल, लेजरफील्ड डयूश, लेविन और हावलैंड ने मानव संबंधों एवं सामाजिक संरचना से अपने संचार आविष्कारों को संबद्ध किया तो वहीं दूसरी तरफ विल्बर श्रैम ने पत्रकारिता शिक्षा में तथा अपने क्षेत्र में समय के अनुसार संचार सिद्धांतों का केंद्रीकृत व व्यवस्थति अध्ययन और शोध पर बल दिया। परिणामस्वरूप सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संचार स्वरूव का परिवर्तन जनसंचार सिद्धांत और शोध के रूप में होने लगा।

संचार और मीडिया शोध की तेज गति ने सूचना शक्ति के बारे में ज्ञान को सामाजिक और राजनीतिक आवश्यकताओं की तरफ मोड़ा और सामाजिक नियंत्रण में उसकी भूमिका को दुनिया ने महसू किया।

विल्वर श्रैम ने अपने को जनसंचार के क्षेत्र में व्यावहारिक शोधकर्त्ता के रूप में प्रस्तुत किया तथा उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि मानव व्यवहार की प्रकृति और कारण क्या हैं? और कैसे संचार मनुष्य को एक दूसरे के साथ प्रसन्नतापूर्वक और अच्छे व्यवहार के साथ रहने के लिए प्रेरित कर सकता है। श्रैम के अनुसार मानव संचार का विज्ञान श्रोता अध्ययन, जनमत, वस्तुगत अध्ययन और सामाजिक प्रभावों के मापन के साथ–साथ विकसित हो सकता है।

लासवेल ने संचार प्रक्रिया के सरलतम मार्ग की व्याख्या की। उन्होंने मानव संचार को समझने के लिए प्रभावपूर्ण और शक्तिशाली प्रारूप देने का प्रयास किया। लासवेल ने न केवल संचार प्रक्रिया के तत्वों (संचारक, संदेश, माध्यम, प्रापक और प्रभाव) के अध्ययन पर ही प्रकाश डाला अपितु संचार शोध

के क्षेत्र में माध्यम (मीडिया विश्लेषण, श्रोता–विश्लेषण और प्रभाव–विश्लेषण पर भी गहरा अध्ययन किया। प्रारम्भ में राजनीतिक संचार की शक्ति को महसूस करने के बाद उन्होंने संचारक और संदेश के भावों को समझने का प्रयास किया। उनकी यह मान्यता है कि शक्तिशाली मीडिया संस्थानों को सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन लाने की दिशा में अपने को लगाना चाहिए।

कालान्तर में जनसंचार शोध संचार के प्रकारों व जनसंचार प्रारूपों (मॉडल्स) के प्रयोग को दर्शाते हैं। समाज विज्ञानों की प्रतिस्थापना के बाद साधारणतया 1970 और 1980 के दशक में, संचार और मीडिया शोध सांस्कृतिक महत्ता को स्वीकार करता हुआ प्रतीत होता है। हाल के वर्षों में जनसंचार शोध समाज विज्ञान शोध की एक मुख्य धारा के रूप में सामानान्तर चल रहा है। इस क्षेत्र में किये गये शोध व्यक्तिपरक मूल्यों से संबंधित होत प्रतीत होते हैं।

गवर्नर ने 'जन' को 'संदेश की गति' के रूप में देखा न कि व्यक्तियों के संगठन के रूप में। वे कहते हैं कि जन मीडिया के ऐतिहासिक प्रतीकों की चाबी या सूत्र उत्पादन और वितरण की प्रक्रिया के साथ संबंधित है। अतः जनसंचार तकनीकी और संस्थानिक रूप से विकसित और औद्योगिक समाजों में संदेशों के वितरण के रूप में देखा जा सकता है।

लेजरफील्ड अमेरिकन समाज के संदर्भ में रेडियों और समाचारपत्रों की भूमिका और उनके प्रभाव की चर्चा करते हुए कहते हैं कि सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में हम संचार साधनों पर एकाधिपत्य व समाज में उनका ए अलग समूह देख सकते हैं। इस काल में प्रेस, शिक्षा और रेडियो पर व्यक्तिगत व सामूहिक आधिपत्य एक समस्या के रूप में उभर कर सामने आती है और रेडियो और प्रेस का गठजोड़ समाज में एक नए समीकरण व ध्रुवीकरण को जन्म देता है। लेजरफील्ड प्रश्न करते हैं कि सामूहिक स्वामित्व की विज्ञापन नीति क्या हैं? कैसे एक सामाजिक महत्त्व की खबर मजदूर संघर्ष अथवा जातीय तनाव में परिवर्तित हो जाती है, और समाचारपत्र समूहों और रेडियों स्टेशन की संरचना में ही ये तस्वीरें क्यों उभरती हैं? अतः मीडिया व्यहवार के क्षेत्र में श्रेष्ठ शोध और अनुसंधान हेतु हमें दूरदृष्टि रखनी पड़ेगी।

आर्थिक रूप से शक्तिशाली समाज में तथा प्रसार माध्यमों के शक्तिशाली आर्थिक और व्यावसायिक विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में लेजरफील्ड इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सरकार, संचार उद्योग और वैयक्तिक नागरिकता इन तीन ध्रुवों के बीच सिमटी है।

संचार शोध का वर्तमान समय राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक वातावरण द्वारा एक नया स्वरूप ग्रहण कर रहा था जो अपने अन्दर द्वितीय विश्वयुद्ध के अनुभव को समेटे हुए था। सामाजिक शोध

संस्थान और रेडियो शोध कार्यालय, कोबंबिया यूनिवर्सिटी में 1941 में 'दर्शन और समाज विज्ञान' के विशेष अध्ययन हेतु और 'मास कम्यूनिकेशन' की समस्याओं की भूमिका के निराकरण हेतु आगे आते हैं। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में हमारे संचार माध्यमों की भूमिका का विशेष उद्देश अंतिम रूप से सामाजिक सेवा ही होनी चाहिए। लेजरफील्ड की यही मान्यता है।

1950 के आसपास वैज्ञानिकों द्वारा जनसंचार के विभिन्न सिद्धान्तों एवं मॉडलों की व्याख्या प्रकाश में आती है। इस काल खंड को उन्होंने 'समालोचनात्मक शोध' (क्रिटिकल रिसर्च) की संज्ञा दी है तथा समालोचनात्मक सिद्धान्त (क्रिटिकल थ्योरी) के अध्ययन की सिफारिश की है। मास मीडिया के क्षेत्र में लेजरफील्ड द्वारा प्रस्तावित 'क्रिटिकल रिसर्च थ्योरी' न तो मार्क्सवादी सामाजिक व्यवस्था की ओर झुकी है और न ही परंपरागत अमेकिन समाज से प्रभावित है। हालांकि उनका क्रिटिकल रिसर्च परंपरागत समाज विज्ञान शोध को ही अपना मूल आधार मानता है और जनसंचार शोध का विकासात्मक स्वरूप प्रस्तुत करता है। साथ ही साथ निष्पक्ष और स्वतंत्र शोध को स्थापित करता है। इस शोध को आगे बढ़ाते हुए गर्बनर ने जनसंचार शोध (मास कम्यूनिकेशन रिसर्च) पर एक उदारवादी और जनतांत्रिक दृष्टिकोण को सामने रखा तथा समाज में वैयक्तिकता के साथ–साथ वास्तविक और सही जनमूल्यों को भी रेखांकित किया। सन् 1960 में जनसंचार शोध पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक दि इफैक्ट्स आफ मास मीडिया', (The effect of Mass Media) का प्रकाशन जोसेफ क्लेपर द्वारा किया गया जो उनके शोध निरीक्षण पर आधारित थी। इसके बाद आधुनिक संचार प्रौद्योगिकी पर आधारित थी। इसके बाद आधुनिक संचार प्रौद्योगिकी को दृष्टि में रखते हुए तथा प्रतिपुष्टि (फीडबैक) को समाहित करते हुए अनेक जनसंचार विशेषज्ञों ने जनसंचार शोध पर कार्य किए। फिर भी हम संचार और समाज के लिए एक सर्वमान्य सिद्धांत की खोज करने में असफल रहे हैं।

जनसंचार शोध पर एक दृष्टि

जब हम जनसंचार शोध की चर्चा करते हैं तो इसका तात्पर्य मुख्य रूप से जनसंचार प्रक्रिया एंव जनसंचार के प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन करना है जिससे किसी तथ्यात्मक निष्कर्ष पर पहुचाँ जा सके।

आज माध्यम (मीडिया) और जनसंचार आधुनिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकता बन चुके हैं और ये हमारे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और यहां तक कि व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित कर रहे हैं। माध्यम (मीडिया) पर हमारी निर्भरता ही हमें उसके प्रक्रिया और प्रभाव को समझने की प्रेरणा प्रदान करती है। आज सम्पूर्ण मानवीय सामाजिक व्यवस्था इससे प्रभावित है।

VPM CLASSES

ज्ञान का स्रोत

जनसंचार के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का एकमात्र विश्वसनीय माध्यम 'शोध' है। इसके लिए वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग आवश्यक है ताकि हम मानव व्यवहार का अध्ययन कर सकें और किसी निश्चित वैज्ञानिक निष्कर्ष पर पहुँच सकें क्योंकि 'संचार' मानव व्यवहार से घनिष्ठ रूप से संबंधित है।

शोध या रिसर्च क्या है? हम कह सकते हैं कि निरीक्षण की नियंत्रित पद्धति के द्वारा सही और उपयोगी सूचनाओं का एकत्रीकरण एवं विश्लेषण है ताकि हम अपने लक्ष्य, निष्कर्ष तक पहुच सकें, जिसमें गलती की संभावनाएं न्यूनतम हों तथा जो वैज्ञानिकता पर आधारित हो।

शोध के मुख्य कारक

जनसंचार प्रक्रिया और जनसंचार के प्रभाव पर शोध के लिए तीन मुख्य कारण हैः

प्रथम– जनता मीडिया के संभावित नकारात्मक प्रभाव से गहरे रूप में संबद्ध होती है संबद्ध होती है और लोग किसी भी तरह के होने वाले दुष्परिणाम व खतरे को शीघ्रातिशीघ्र जानने एवं उसका उत्तर प्राप्त करना चाहते हैं।

द्वितीय– जन संचार को अच्छी तरह से समझना भी महत्वपूर्ण है।

तृतीय– जनमाध्यम (मास मीडिया) और व्यावसायिक क्षेत्र के व्यावहारिक समस्याओं के निराकरण में शोध का विशेष महत्त्व और भूमिका है।

जनसंचार शोध के अन्य प्रेरक कारक भी हैं जो अनुसंधान को विशेष प्रेरणा और दिशा प्रदान करते हैंः

(i) **अज्ञात के प्रति जिज्ञासा (Curiosity of the unknown) :** जिज्ञासा मानव का एक स्वाभाविक गुण ही नहीं, बल्कि यह प्रत्येक शोध का सबसे शक्तिशाली प्रेरक कारक भी है। जिज्ञासा से प्रेरित होकर ही मनुष्य अपने चारों ओर के परिवेश में से कुछ नयी चीज ढूंढ़ निकालने का प्रयत्न करता है और ऐसा ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश करता है जिसके बारे में अधिकांश लोग अनभिज्ञ होते हैं।

(ii) **कार्य–कारण को जानने की इच्छा (Desire to known cause & effect) :** जनसंचार अनुसंधान को प्रेरणा देने वाले कारकों में किसी घटना के कार्य–कारण जानने की इच्छा का योगदान अति महत्त्वपूर्ण है। शोधकर्त्ता को सदैव यह प्रेरणा मिलती रहती है कि वह जिन घटनाओं का अध्ययन कर रहा है उसके घटित होने का क्या कारण है।

(iii) **रचनात्मक कल्पना शक्ति (Fertile Imagination)** रचनातमक कल्पना शक्ति ही एक ऐसा आधार है जो अनुसंधानकर्त्ता को अध्ययन से संबंधित उपयोगी परिकल्पनाओं का निर्माण करने की क्षमता प्रदान करता है।

(iv) **नई परिस्थितियसों का उत्पन्न होना (Appearance of New Conditions) :** परिवर्त्तनशील दशाएँ एक शोधकर्त्ता को उनके कारणों की खोज की ही प्रेरणा नहीं देती बल्कि उनसे उत्पन्न प्रभावों के अध्ययन की भी प्रेरणा देती हैं।

(v) **नई प्रणालियों की खोज तथा पुरानी प्रणालियों की परीक्षा (Desire to discover new procedures and testing of old ones) :** नयी प्रणालियों की खोज तथा पुरानी प्रणालियों की परीक्षा जिससे नवीन वैज्ञानिक ज्ञान की प्राप्ति हो सके जो जनसंचार शोध के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे मूलभूत प्रश्न हैं जो जनसंचार के विभिन्न आयामों तथ मानव समाज पर पड़ने वाले प्रभावों से संबंधित हैं शोध की दिशा प्रदान करते हैं।

जनसंचार शोध के लिए उपर्युक्त वर्णित कारकों के अतिरिक्त कुछ ऐसे ज्वलंत प्रश्न हैं जिनके समाधान के लिए मीडिया कुछ ऐसे ज्वलंत प्रश्न हैं जिनके समाधान के लिए मीडिया शोध या जनसंचार शोध की आवश्यकता पड़ती है।

1. रेडियो स्टेशन कार्यक्रमों के संदर्भ में किस तरह का प्रारूप स्वीकार करना चाहिए?
2. आकाशवाणी को किस तरक का गीत और संगीत प्रसारित करना चाहिए?
3. प्रातः काल आकाशवाणी के कार्यक्रम में स्रोत किस तरह के उद्घोषक एवं कार्यक्रम को पसंद करते हैं?
4. क्यों नहीं हाल ही में प्रारम्भ किया गया नवीन दूरदर्शन कार्यक्रम उतना प्रभावशाली है, जितना उससे अपेक्षा की गई थी?
5. विभिन्न जनमाध्यमों दूरदर्शन, आकाशवाणी तथा विभिन्न मुद्रण माध्यम में विज्ञान कितना प्रभावशाली है?
6. समाचार–पत्रों की प्रसार एवं पाठक संख्या क्यों गिर रही है?
7. मतदाताओं को आकर्षित करने व चुनाव जीतने के लिए चुनाव–प्रचार अभियान में राजनीतिज्ञों को किस तरक का संदेश प्रसारित अथवा प्रयोग करना चाहिए?
8. पाठक किस तरक का विज्ञापन स्थानीय समाचार–पत्रों में प्रायः देखना पसंद करते हैं?
9. एक नये उपभोक्ता–उत्पाद अथवा वस्तु को प्रस्तुत करने अथवा विज्ञापित करने हेतु किस तरक का विज्ञापन कॉपी एवं प्रभावी तत्त्व होने चाहिए?
10. एक नये दूरदर्शन कार्यक्रम के लिए किस तरक का उद्घोषक होना चाहिए?

11. क्या आजकल दूरदर्शन पर विगत पाँच वर्षों की अपेक्षा विशेष हिंसात्मक दृश्य अथवा कार्यक्रम प्रदर्शित हो रहे हैं? और उनका क्या प्रभाव पड़ रहा है?

12. एक पत्रिका के आवरण पृष्ठ की सफलता के लिए कौन–कौन से तत्त्व आवश्यक है ?

13. किसी सार्वजनिक अथवा निजी प्रष्ठिान के कर्मचारी अपने आन्तरिक समाचार पत्र अथवा गृह पत्र (हाउस जनरल) को क्यों नहीं पढते हैं? अथवा ये पत्र–पत्रिकाएँ क्यों नहीं प्रशावशाली एवं पठनीय हैं?

14. क्या दूरदर्शन अपने कार्यक्रमों द्वारा भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों को प्रभावित अथवा विकृत कर रहा हैं?

वैयक्तिक रूप से अथवा संपूर्ण समाज जिन उत्पादों का उपभोक्ता है उनके बारे में मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव को समझने में शोध का योगदान महत्त्वपूर्ण हैं जन संचार या माध्यम शोध (मीडिया शोध) लोगों को उचित निर्णय लेने में मदद प्रदान करता है।

शोधकर्त्ता मुख्य रूप से मौलिक या विशुद्ध शोध और व्यावहारिक शोध पर काम करते हैं। यद्यपि दोनों का पूर्णतया वर्गीकरण संभव नहीं है। फिर भी दोनों का विशेष अध्ययन एक उपयोगी विचार और शोध के कारणों को अच्छी तरक से समझने की अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

विशुद्ध शोध किसी के लाभ में वृद्धि के लिए प्रयोग नहीं किया जाता। इसकी रूपांकन और साधारणतया खोज का उद्देश्य है– 'विशेष और आधुनिक ज्ञान।' विशुद्ध शोध मुख्य रूप से शैक्षिक और बौद्धिक क्षेत्र द्वारा किया जाता है। यह हमारी शारीरिक, जैविक और सामाजिक पर्यावरण को समझने की मूल रूप से कोशिश है। यह साधारण और विशेष दोनों तरह का हो सकता है, जिसका संबंध सामाजिक घटनाओं के बारे में मौलिक सिद्धान्तों की रचना करना होता है।

संचार शोधकर्त्ताओं ने माध्यम–प्रभाव के विभिन्न प्रकारों को समझने और उनकी व्याख्या के लिए बहुत से सिद्धांतों एवं पद्धतियों का विकास किया है। उनमें कुछ बहुत विस्तृत हैं तो कुछ बहुत सीमित। कुछ सिर्फ दूरदर्शन और हिंसा पर आधारित हैं, तो कुछ धारावाहिकों पर आधारिक हैं। बहुत सी विज्ञापन एजेंसियां, प्रकाशक, फर्म्स, प्रसार तंत्र एव जनसम्पर्क (पब्लिक रिलेशन) संगठन आदि व्यावहारिक शोध केवल अपने लाभ के लिए किए हैं। इसी तरह मुद्रण माध्यम, अन्य जन माध्यम, प्रसार, विज्ञान और जन सम्पर्क (पब्लिक रिलेशन) के क्षेत्र में भी व्यावहारिक शोध हुए हैं।

मुद्रण माध्यम (प्रिंट मीडिया) अर्थात समाचारपत्र, पत्रिकाओं में व्यावहारिक शोध (एप्लाइड रिसर्च) का मुख्य उद्देश्य–पाठकों, प्रसार पृश्ठ सज्जा आदि का अध्ययन करना है। विज्ञान और उसके प्रभाव के अध्ययन के लिए जनसंचार क्षेत्र में व्यावाहारिक शोध (एप्लाइड रिसर्च) हुए हैं। इसी तरह जनसंपर्क

VPM CLASSES

के क्षेत्र में भी (पब्लिक रिलेशन रिसर्च) मानव और संगठनों के आपसी संबंध, सोच आदि पर शोध हुए हैं।

जनसंचार शोध एवं पद्धतियों के मुख्य चरण एवं पद्धतियां

संचार शोध एक वैज्ञानिक व व्यवस्थित पद्धति है जिसमें छः मुख्य चरणों से गुजरना पड़ता है। जिसकी शोध पद्धतियों के साथ पीछे की गई है।

अतः इन समस्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मीडिया शोध ज्ञान का एक सर्वोत्तम साधन पर पहुंचत हैं कि मीडिया शोध ज्ञान का एक सर्वोत्तम साधन है जिसमें शोधार्थी अपने विभिन्न चरणों का अध्ययन और विश्लेषण करके अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचता है। निष्कर्ष की प्राप्ति संचार शोध का अंतिम चरण है। इसे शोध प्रतिवेदन के रुप में प्रस्तुत किया जाता है। शोध से हम जन साधारण का तथा मीडिया के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभावों को समुचित रुपरेखा प्रदान करते हैं। इस प्रकार एक ऐसा मार्ग प्रशस्त होता है जिसमें संचार प्रक्रिया और जनसंचार प्रभाव को हम अच्छी जरह समझ व वर्णित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त माध्यम (मीडिया) और माध्यम (मीडिया) पर आधारित संस्थान और उद्योग व्यावासायिक रुप से आने वाली समस्याओं का निराकरण भी करते हैं।

जनसंचार शोध विज्ञान के आधार (पैटर्न) पर ही कार्य करता है। क्योंकि इसमें भी कारण और प्रभाव के अंतः संबंधों की व्याख्या की जाती है। निष्कर्ष और तथ्यों के सत्यापन के लिए पुनः परिक्षा भी विज्ञान के तर्ज पर ही किया जा सकता है। जिसके फलस्वरुप आज संचार अध्ययन के लिए भी अनेक शोध पद्धतियां एवं प्रारुप (रिसर्च डिजाइन्स) उपलब्ध हैं। सामाजिक विज्ञानों में जिस सर्वे शोधपद्धति को विकसित किया जाता है उसका संचार शोधर्थी भी व्यापक रुप से प्रयोग करते हैं। उसका संचार शोधार्थी भी व्यापक रुप से प्रयोग करते हैं। विषय वस्तु विश्लेशण संचार शोध की एक अद्वितीय वैज्ञानिक शोधपद्धति है जिसका संचार शोध में व्यापक महत्त्व है? एक माध्यम अपने श्रोता से क्या कह रहा है? श्रोता की क्या प्रतिक्रिया है? संचारक का क्या आशय है? इन सभी प्रशनों का उत्तर संचार शोध के द्वारा ही शोधार्थी और मीडिया वैज्ञानिक जनमत के अध्ययन में विशेष सफलता प्राप्त किए हैं। सामाजिक प्रतिक्रिया द्वारा ही जनमाध्यम (मास मीडिया अपने प्रस्तुतीकरण की दिशा निर्धारित करते हैं। जनमत शोध की तकनीक मीडिया अध्ययन में विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है। आंकड़ो (डाटा) और विषय वस्तु के संदर्भ में माध्य (मीडिया) प्रभाव का अध्ययन जनमत परिवर्तन के लिए जरुरी है। इससे हम जनमत की वास्तविकता और अवास्तविकता को भी अच्छी तरह से समझते व परखते हैं।

VPM CLASSES

इस तरह संचार शोध, संचार की दुनिया में एक अत्यंत उपयोगी एवं आवश्यक भूमिका का उत्तरदायित्व पूर्ण निर्वाह कर रहा है।

आज समाज विज्ञान अथवा जनसंचार (मास मीडिया) के अधिकाशं शोधकर्ता 'कंम्यूटर सॉफ्टवेय पैकेज' पर निर्भर हैं। व्यावसायिक रुप से प्रशिक्षित शोधकर्त्ता प्रायः अपने अध्ययन और प्रयोग में उच्च स्तरीय विधियों का प्रयोग करते हैं। जो एक विशेष ज्ञान के लिए आज आवश्यक भी है। लेकिन बिना इस विशेष प्रशिक्षण के भी शोधार्थी विशेष प्रश्नों और उत्तरों का महत्त्व की दृष्टि से कर सकता है, समझ सकता है अथवा एक अच्छे मीडिया अथवा जनसंचार शोध के महत्त्वपूर्ण आयाम को समझने के लिए सावधानीपूर्वक प्रश्न पूछना और व्यवस्थित रुप से उसका उत्तर देना, अतिआवश्यक है।

अंत में निष्कर्ष के रुप में हम कह सकते हैं - The best mass communication scientific research, including research about the mass media and its impact uses communication and media scientific theory to help, identify and clarify the questions to be asked.

मीडिया अथवा जनसंचारः शोध का कोई आदि अंत नहीं होता। यह एक कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है जो अनवरत चलती रहती है। कोई भी निष्कर्ष शाश्वत नहीं हो सकता और न ही सदैव अद्यतन और सुसंगत। शोध के पारंपरिक विवरण को हम पांच विशेषताओं में समाहित कर सकते हैं। जिसके लिए पार्सन्स ने मूवी (Movie) शब्द का प्रयोग किया है।

M - Mathematical Precession and Accuracy
O - Objectivity
V - Verify ability
I - Impartiality
E - Expertness

अतः जनसंचार अथवा मीडिया शोध जनसंचार के समाज एवं मानव पर पड़ने वाले प्रभावों का एक व्यवस्थित, तार्किक, वैज्ञानिक एवं आलोचनात्मक सूक्ष्म परीक्षण है जो कि गए सिद्धांतों एवं तथ्यों की खोज करता है। यह न केवल पूर्ण सत्य की व्याख्या करता है, अपितु सत्य की खोज पर आधारित शोधकर्त्ता के उन प्रयोसों का दिग्दर्शन करता है जो मानव और समाज के व्यावहारिक संबंधों के परिप्रेक्ष्य में की गयी है। इसके लिए जनसंचार चैज्ञानिकों ने पाँच निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग किया है जो शोध की प्रकृति को दर्शाते हैं।

(i) Media Research is systematic (व्यवस्थित) (ii) Kogical (तार्किक)

(iii) Imperical (सूक्ष्म) (iv) Reductive (लघुकारक)

(v) Media Research is replaceable and transmitable. (अनुसंधान परिवर्तनीय एवं संप्रेषणीय है)

VPM CLASSES